शैक्षिक
संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-48, दिसंबर 03-मार्च 2004

संपादन एवं वितरण:

एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 253518
eklavyamp@mantrafreenet.com
eklavyah@sify.com

एक प्रति: 15 रुपए
वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 75 रुपए
आजीवन सदस्यता: व्यक्तिगत 1000 रुपए
संस्थागत 2000 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: घने बादलों से घिरा होने की वजह से वैसे तो शुक्र ग्रह एक ऐसी गेंद की तरह नज़र आता है जो रूईनुमा बादलों से ढंकी हुई हो। शुक्र के संदर्भ में दृश्य वर्णक्रम की तो सीमा आ जाती है परन्तु वर्णक्रम के पराबैंगनी और अन्य हिस्सों के इस्तेमाल से पता चला है कि इस ग्रह की सतह उतनी भी समतल-सपाट नहीं है जितनी एक समय मानी जाती थी। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जानकारियों के आधार पर कलाकार द्वारा बनाई गई परिकल्पना दिखाई गई है मुखपृष्ठ पर। इस पेंटिंग में शुक्र ग्रह के दक्षिणी गोलार्द्ध पर पाई जाने वाली पर्वत शृंखला दिख रही है जो पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई है। इस पर्वत शृंखला के बाईं ओर एवरेस्ट जितनी ऊंची चोटियां दिख रही हैं। शुक्र पारगमन पर लेख पढ़िए पृष्ठ 7 पर।

पिछला आवरण: जलपरी जैसा दिखता डेम्सलफ्लाइ का लार्वा (Nymph) जो पानी के अंदर रहता है और मछली की तरह गिल्स से सांस लेता है। ड्रेगनफ्लाइ और डेम्सलफ्लाइ के बारे में लेख पृष्ठ 36 पर।

*इस अंक में चित्र निम्न किताबों से: **इनसेक्ट ऑफ द वर्ल्ड:** एंथोनी वूटॉन; प्रकाशक: ब्लेंडफोर्ड प्रेस। **इन्सेक्ट्स – द इयर बुक ऑफ एग्रीकल्चर;** प्रकाशक: यूनाइटेड स्टेट्स डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर, वाशिंगटन। **स्माल वंडर:** मैरी फैंड; प्रकाशक: ब्लेंडफोर्ड प्रेस। **द बुक ऑफ पापुलर साइंस;** प्रकाशक: ग्रोलियर इनकॉर्पोरेटेड,न्यूयॉर्क। **पंचतंत्र की कहानियां:** सी. बी. टी. प्रकाशन। **प्लेनेट्स:** जोनॉथन नार्टन लियोनार्ड; प्रकाशक: टाइम लाइफ बुक्स, हांगकांग। **द इनसेक्ट्स:** पीटर फार्ब; प्रकाशक: टाइम लाइफ बुक्स, हांगकांग।*

एकलव्य संस्था द्वारा प्रकाशित

* कविताएं, कहानियां, चित्रकथाएं
* बाल-नाटक, तरह-तरह की पहेलियां
* ऑरीगेमी व गतिविधियों की किताबें
* शिक्षा के मुद्दों पर विविध किताबें

एकलव्य के प्रकाशन प्राप्त करने के लिए अपने निकटतम रेलवे स्टेशन के ए. एच. व्हीलर बुक स्टॉल पर संपर्क कीजिए।

यदि व्हीलर के स्टॉल पर एकलव्य के प्रकाशन उपलब्ध न हों तो स्टॉल प्रबंधक से आग्रह करें कि वो इन प्रकाशनों को अपने प्रधान कार्यालय से मंगवाएं।

प्रकाशनों की विस्तृत सूची हेतु हमें लिखें।

हमारा पता है:

एकलव्य
ई-7/ एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल
म. प्र. 462016
फोनः 0755 - 2463380, 2464824
ईःमेल- eklavyamp@mantrafreenet.com

दुनिया को नापना. 7
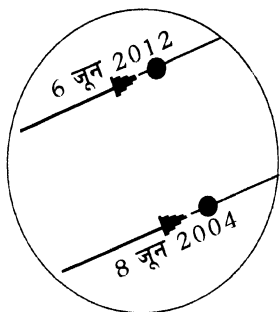
इस साल 8 जून के दिन शुक्र ग्रह सूर्य की चकती के सामने से गुज़रता हुआ दिखाई देगा। इसे हम शुक्र द्वारा लगाया सूर्य-ग्रहण भी कह सकते हैं। इस तरह की आकाशीय घटनाएं काफी दुर्लभ होती हैं। यह मौका लगभग 121 साल बाद आया है इसलिए इसे देखने से चूकना नहीं चाहिए।

इसे कैसे देखना है, कौन-सी सावधानियां बरतनी हैं, आदि सवाल तो महत्वपूर्ण हैं ही परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस ग्रहण की घटना को आधार बनाकर खगोल वैज्ञानिकों ने पहली बार सूर्य से पृथ्वी की दूरी का पता लगाया था; जिसे आज हम 'एक एस्ट्रोनॉमिकल यूनिट' कहते हैं। तो देर किस बात की, इस लेख को पढ़िए और और आप भी दुनिया को नापने की कोशिश कीजिए।

उड़ते ड्रेगन 36

आप इन्हें चिड्डा, हेलिकॉप्टर या ऐसे ही कई नामों से जानते होंगे। मॉनसून के ठीक पहले ये आ धमकते हैं। बाकी समय ये कहां रहते हैं, कैसे आवास पसंद हैं इन्हें, इनका जीवन चक्र कैसा है, ये क्या खाते हैं, प्रजनन कैसे होता है इनमें, भारत में इनकी कितनी प्रजातियां पाई जाती हैं, इन प्रजातियों का वितरण कैसा है, उस वितरण का क्या महत्व है? – ऐसे बहुत से सवालों पर गौर किया गया है इस लेख में।
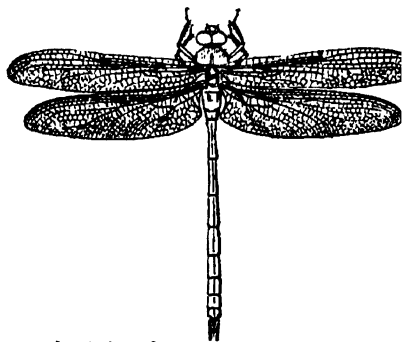
दरअसल भारत के संदर्भ में ड्रेगनफ्लाइ और डेम्सलफ्लाइ के बारे में काफी जानकारी उपलब्ध होने के बावजूद समझ में आता है कि और बहुत सारे पहलुओं पर अध्ययन करने और उन्हें समझने की ज़रूरत है, विशेष तौर पर जलीय पर्यावरण की गुणवत्ता पहचानने के संदर्भ में इनका इस्तेमाल महत्वपूर्ण हो सकता है।

कहानी सुनाने 57

प्रायमरी कक्षाओं में हाव-भाव के साथ नाटकीय ढंग अपनाते हुए कहानियां सुनाना एक अलग ही महत्व रखता है; इसे हम सब जानते हैं। सबसे बड़ी चुनौती होती है कि कहानी का चुनाव किन आधारों पर किया जाए। पंचतंत्र की एक कहानी का उदाहरण लेते हुए इन आधारों का विश्लेषण कर रहे हैं प्रख्यात शिक्षा शास्त्री कृष्ण कुमार इस लेख में।

तेईस नुआ 77

गणित की कक्षा में काफी सारा समय अंकों के साथ मशीनी तरीके से क्रियाएं करने में ही बीतता है। अगर कोई बच्चा ठीक से जोड़-घटा न कर पाए तो उसको गधा, मूर्ख जैसे विशेषणों से नवाज़ा जाता है। गणित की कक्षा इतनी यंत्रणामयी क्यों होती है? एक कहानी के मार्फत नीलमणि साहू महापात्र और भी बहुत कुछ कहना चाहते हैं शिक्षकों के ऐसे व्यवहार के असर के बारे में।

शैक्षिक संदर्भ

अंक: 48 दिसंबर 03–मार्च 2004

इस अंक में

आपने लिखा

रेलयात्रा के दौरान यह पत्रिका किसी अनजाने यात्री की थी और मुझे पढ़ने का मौका मिला। इसकी रचनाएं और प्रकाशन उत्कृष्ठ हैं, उसके लिए पूरी टीम को बधाई।

'किसने गाया मीरा को' परिता मुक्ता द्वारा एक विस्तृत व अनूठी-अनछुई प्रस्तुति है। इसे पढ़ते समय मैं अपने बचपन से जुड़े इस मंदिर की यादों में खो गया।

सन् 1952 में चित्तौड़गढ़ – उस समय इसे किला ही कहा जाता था। शहर नीचे और दुर्ग तक जाने का सात किलोमीटर का निर्जन रास्ता, उस पर बने सात सिंहद्वार। किले का आखिरी विशालकाय दरवाज़ा – रामपोल – जिसे रात में बंद कर दिया जाता था। गिने-चुने मकान थे वहां। 1952 में पहली कन्या शाला खुली थी और मेरी मां वहां पहली अध्यापिका बनी थीं और मेरे पिता चित्तौड़ में शिक्षा विभाग में थे।

यह लेख बिल्कुल प्रामाणिकता से लिखा गया है क्योंकि हमारी पूरी तीसरी और चौथी कक्षा उस वर्ष जीर्ण-शीर्ण मंदिर को श्रमदान के तहत साफ करने जाती थी और शनिवार को सांस्कृतिक कार्यक्रम भी उस मूर्तिविहीन मंदिर में ही होता था। श्री लालसिंह शक्तावत के प्रयासों से ही इस मंदिर को मीरा मंदिर कहा जाने लगा।

लेख में शक्तावत जी का नाम 'लाल सिन्हा शक्तावत' लिखा गया है। सिन्हा उपनाम बिहार में होता है। सही नाम लालसिंह शक्तावत है और ये सिसोदिया क्षत्रिय हैं, इसलिए इस मंदिर के विषय में तत्कालीन महाराणा भूपालसिंह जी से इन्होंने ही चर्चा भी की थी।

ये भी सही है कि मूर्ति का आश्वासन महाराणा साहब ने दिया था लेकिन कारण जो भी रहे हों – प्लाईवुड पर मीरा की साढ़े पांच फुट लंबी आकृति, उस पर उदयपुर के चित्रकार से रंग भरवाकर भिजवाई थी।

उस समय 'मीरा महोत्सव' पूरे किले में मनाया गया था। उस समिति के अध्यक्ष लालसिंह शक्तावत थे व सचिव मांगीलाल शर्मा थे, जो मेरे पिता थे; इसलिए उस समय इस मंदिर के प्रतिष्ठा समारोह में हमने काफी कार्य किया था। आपने संदर्भ पत्रिका में इस अनछुए इतिहास को प्रकाशित किया इसके लिए पुनः एक बार बधाइयां। संदर्भ प्रकाशन की ऊंचाइयों को छुए।

डॉ. राजेन्द्र भट्ट
पालनपुर, गुजरात

लंबे इंतज़ार के बाद अंक 46 व 47 पढ़ा। अंक 46 में पर्वतों की यात्रा का रोमांच मन में भर गया। उत्तरांचल के कई लोगों ने ऐसी यात्राएं की हैं। पंडित नैन सिंह भी तो यहीं के थे, जिनका घुम्मकड़ी में कोई सानी नहीं मिलेगा।

नैनीताल से प्रकाशित होने वाली 'पहाड़' पत्रिका ने भी ऐसी यात्राओं पर दो विशेषांक निकाले हैं।

'गुलेलबाज़ लड़का' कहानी के माध्यम से भीष्म साहनी बहुत याद आए।

हमारी पाठ्य पुस्तकें हमारे आसपास की कितनी कम बातें करती हैं इसका आभास तब मिला जब 'कहां गए वो आम' लेख पढ़ा। ग्रामीण परिवेश में तो शिक्षा में भाषा का बहुत असर पड़ता है। हमारे गांवों में बच्चे स्थानीय बोली से ही परिचित होते हैं और अपने स्कूल में पाठ्यक्रम में उन्हें कहीं भी अपनी बोली – कुमांउनी – में बातें होती नहीं दिखती। अध्यापक ज़बरदस्ती उनसे हिन्दी बुलवाते हैं। जबकि खुद भी आपस की बातचीत कुमांउनी में करते हैं। कई बार ऐसा महसूस होता है कि परिवेश से शिक्षा का बहुत कटाव है, अब पहाड़ पर गधा नहीं होता, इमली नहीं लगती, कछुआ नहीं पाया जाता, तो कठिनाई आती है कि ये आखिर कैसे होते होंगे? इनके लिए चित्रात्मक जानकारी वाली किताबें उपलब्ध नहीं हैं। फिर इन सब चीज़ों की मांग हेतु जनाधार भी नहीं है, क्योंकि विकल्प स्वरूप पालक बच्चों को पब्लिक स्कूलों में भेज देते हैं, जहां शिक्षा तो महंगी है लेकिन कई तरह के अनुशासन भी होते हैं। लेकिन इनके पास भी इन सब से निपटने के लिए कोई ठोस तरीका नहीं है। शिक्षा को बोझिल होने से बचाने के लिए रोचक पाठ्यक्रम, किताबों का अभाव भी है।

अंक 47 भी मिल गया है। उम्मीद है आगे भी नियमितता को बनाए रखेंगे।

कमलेश उप्रेती, नारायण नगर
पिथौरागढ़, उत्तरांचल

भूल सुधार

पिछले अंक में लेख 'किसने गाया मीरा को' में मीरा महोत्सव के अध्यक्ष का नाम लाल सिन्हा शक्तावत प्रकाशित हो गया था। हमारे एक पाठक राजेन्द्र भट्ट ने इस भूल को सुधारा है। सही नाम लालसिंह शक्तावत है।

इसी तरह पिछले अंक में प्रकाशित कहानी 'विलियम बिल्ला' के चित्रकार श्री उदय खरे थे। भूलवश इनका नाम उदय प्रकाश लिखा गया था। इस गलती के लिए हमें खेद है।

– संपादक मंडल

संदर्भ के पाठकों को फिल्टर वाला चश्मा

8 जून 2004 को सुबह 10:46 से शाम 4:50 के बीच फिल्टर की मदद से आप भी कोशिश करके देखिए – सूरज की चकती पर अगर एक काला बिन्दु दिख रहा हो तो वह शुक्र ग्रह ही है। यदि उस दिन आप फिल्टर का इस्तेमाल करके उसे नहीं देख पाएं तो इस फिल्टर को टेलिस्कोप या दूरबीन पर लगाकर सूर्य-शुक्र ग्रहण देख सकते हैं।

संदर्भ के पाठकों को हम इस अंक के साथ फिल्टर वाला एक चश्मा दे रहे हैं। ताकि वे इस ग्रहण के साथ-साथ ऐसी ही अन्य घटनाओं का लुत्फ भी उठा सकें।

ग्रहण देखने के लिए फिल्टर

इस ग्रहण को सुरक्षित रूप से देखने के लिए ऐसे फिल्टर नवनिर्मिती व कॉमेट मीडिया फांऊडेशन द्वारा उपलब्ध करवाए जा रहे हैं जो सूर्य की रोशनी की तीव्रता को एक लाख गुना कम कर देते हैं।

प्रत्येक फिल्टर की कीमत 5/– रुपए है। शालाओं या अन्य समूहों द्वारा 100 से ज़्यादा फिल्टर एक साथ खरीदने पर ये 3.50 रुपए प्रति फिल्टर की दर पर उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

नवनिर्मिती व कॉमेट मीडिया फांऊडेशन क्रमशः कम खर्चीले नवाचारी वैज्ञानिक खिलौने विकसित करने वाले व विभिन्न संचार माध्यम के ज़रिए नवाचारी शिक्षा में काम करने वाले अव्यावसायिक समूह हैं।

संपर्क करें

‘डिस्कवर इट’
फ्लेट नं 2, लेक साइट बिल्डिंग
स्टेट बैंक के सामने, पवाई हॉस्पीटल के पास
पवाई, मुंबई – 400 076
फोनः (022) 2579 2628, 2577 3215

दुनिया को नापना

एक पत्थर और धागे के ज़रिए

आमोद कारखानिस

विवेक मोंटेरो, नवनिर्मिती के लेख पर आधारित

दुनिया में कुछ प्रयोग ऐतिहासिक होते हैं। ऐसे ही ऐतिहासिक खगोलीय प्रयोगों में से कुछ प्रयोग जिनके ज़रिए सूर्य से पृथ्वी की दूरी की पहली बार गणना की गई थी, उन्हें सरल ढंग से करने के तरीके यहां सुझाए गए हैं, बिना किन्हीं विशेष उपकरणों के।

मैं जानता हूं कि आपको यह शीर्षक देखकर हैरानी होगी – परन्तु एक पत्थर और एक धागे के टुकड़े से बहुत ही कारगर खगोलीय प्रयोगशाला उपलब्ध हो जाती है। आपको लग रहा होगा कि मैं मज़ाक कर रहा हूं परन्तु रुकिए मुझे थोड़ा समझाने दीजिए।

जब भी विज्ञान की बात होती है, हमारे सामने प्रयोगों और प्रयोगशालाओं की छवि आ खड़ी होती है। जैसे अगर भौतिकशास्त्र की बात करें – अगर हमें इस बात का अध्ययन करना है कि कांच में से

गुज़रने से प्रकाश के व्यवहार पर क्या असर पड़ता है तो हम क्या करते हैं? एक कांच का गुटका और प्रकाश का स्रोत लेकर हम चाहें वैसे प्रयोग अपनी कक्षा या प्रयोगशाला में कर सकते हैं। परन्तु खगोलशास्त्र एक अलग ही तरह का विज्ञान है। यह तारों और ग्रहों जैसे सुदूर और विशाल खगोलीय पिंडों का विज्ञान है। अगर आप पृथ्वी से सूर्य की दूरी नापना चाहते हैं तो कोई तरीका नहीं है कि सूर्य पर जाकर, एक इतनी बड़ी टेप या मापपट्टी लेकर यह दूरी नाप पाएं जैसे कि आप एक छड़ी या मेज़ की लंबाई मापते हुए करते हैं। तो हम खगोलीय प्रयोगशाला में आखिर करते क्या हैं, प्रयोग कैसे करते हैं? एक खगोलशास्त्री केवल अवलोकन कर सकता है। किन चीज़ों के अवलोकन कर सकता है वह – इसकी भी सीमाएं हैं।

खगोलशास्त्र में आप केवल कोण और समय माप सकते हैं। हम दूरियां नहीं नाप सकते परन्तु यह ज़रूर पता कर सकते हैं कि हम जहां खड़े हैं वहां से देखने पर दो तारे आपस में कितने अंश का कोण बना रहे हैं, या पृथ्वी से देखने पर सूर्य की चकती कितने अंश का कोण बनाती है; या फिर हम यह नाप सकते हैं कि एक निश्चित समय में किसी तारे ने कितनी कोणीय दूरी तय की है यानी कितना खिसका वह अपने पहले स्थान से। इसलिए खगोलीय प्रयोगशाला बनाने के लिए हमें ऐसे साधनों की ज़रूरत होगी जिनका इस्तेमाल हम कोण या समय नापने के लिए कर सकते हैं। इसी वजह से पत्थर और धागे का टुकड़ा हमारे काम आएंगे।

इतने सशक्त उपकरणों के बारे में बिना किसी उदाहरण के बात करने में कोई मज़ा नहीं है इसलिए क्यों न खगोलशास्त्र की एक अत्यंत महत्वपूर्ण दूरी का उदाहरण लेकर बात शुरू करें – यह देखने की कोशिश करें कि पृथ्वी से सबसे नज़दीकी और सबसे परिचित तारे तक की दूरी हम कैसे नाप सकते हैं? यह सवाल साधारण-सा लग सकता है परन्तु है वैसा नहीं। विज्ञान को इसे नापने और एक सटीक उत्तर तक पहुंचने में काफी लंबा अर्सा लग गया।

बहुत समय पहले ईसा पूर्व पांचवीं सदी में किसी समय ग्रीक विद्वान एनेक्सेगोरस शायद उन शुरुआती लोगों में से था जिसने इस दूरी को मापने की कोशिश की। यह समय था जब ग्रीक विद्वान ज्यामिती को

व्यवस्थित करने की कोशिशों में लगे हुए थे। जैसा कि हम सब अब जानते हैं कि मानव के इतिहास में ज्यामिती की शुरुआत ज़मीन नापने के तरीके विकसित करते हुए हुई।

एनेक्सेगोरस को यह विचित्र ख्याल आया कि ब्रह्मांड को मापने के लिए ज्यामिती और खगोलशास्त्र को मिला देना चाहिए। वह सूर्य की पृथ्वी से दूरी व सूर्य का व्यास दोनों नापना चाहता था। उसने यह जानने के लिए एक तरीका भी निकाल लिया और उत्तर भी प्राप्त कर लिया कि पृथ्वी और सूर्य की दूरी 6500 किलोमीटर है और सूर्य का व्यास 60 किलोमीटर है।

आज हम जानते हैं कि ये दोनों जवाब गलत हैं परन्तु फिर भी एनेक्सेगोरस शायद पहला व्यक्ति था जिसने यह प्रयास किया था। उसके जवाब इसलिए गलत नहीं थे क्योंकि उसका तरीका गलत था। बस गलत थी तो उसकी एक मान्यता। परन्तु हम पटरी से उतरने लगे हैं इसलिए चलिए हम अपनी बात पर लौटते हैं – एनेक्सेगोरस की कोशिश के बारे में और जानकारी के लिए आप अगले पृष्ठ पर दिया गया बॉक्स देख सकते हैं।

आप सबने सूर्य देखा है। हमें मालूम है कि सूर्य एक गोल चकती जैसा दिखता है। परन्तु यह चकती बड़ी कितनी है? आप सूर्य की तरफ सीधे देख नहीं सकते। ऐसा करने से आंखों को नुकसान पहुंच सकता है, इसलिए चकती का आकार नापना मुश्किल है। इस वजह से हम चकती की छवि हासिल करके, उसका आकार नापकर देखेंगे कि उससे इस चकती के आकार के बारे में हम कुछ कह सकते हैं क्या?

सूर्य की छवि कैसे प्राप्त करें?

आपने पिनहोल केमरा के बारे में ज़रूर पढ़ा होगा। हम उसी सिद्धांत का इस्तेमाल करके सूर्य की छवि हासिल करेंगे। इस प्रयोग के लिए मोटी कार्डशीट या फिर पोस्टकार्ड की ज़रूरत होगी। इस कार्डशीट या पोस्टकार्ड में एक छेद बना लीजिए – लगभग आधा सेंटीमीटर व्यास का सुराख ठीक रहेगा (पेपर पंच से लगभग इसी साइज़ का छेद बनता है)। उसी के पास बड़े व्यास का एक और छेद बनाइए। इस कागज़ को सूर्य के सामने इस तरह से पकड़ें कि उसकी छाया दीवार पर बने।

एनेक्सेगोरस का प्रयोग और एक चूक

एनेक्सेगोरस पहला ग्रीक वैज्ञानिक था जिसने खगोलीय अवलोकनों के लिए ज्यामिती की अवधारणाओं का इस्तेमाल किया और खगोलीय दूरियां मापने की कोशिश की। यहां पर उसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परन्तु आसान व मज़ेदार प्रयोग दे रहे हैं।

एनेक्सेगोरस को मालूम था कि ग्रीक साम्राज्य के कुछ इलाकों में किन्हीं विशेष दिन सूर्य किरणों से छाया नहीं बनती थी। यानी कि उन स्थानों पर उस दिन सूर्य एकदम सिर के ऊपर रहता है। अब हमें मालूम है कि यह इलाका मकर और कर्क रेखा के बीच में आता है। उसने दो शहर और अपने सबसे विश्वसनीय लोग इस प्रयोग को करने के लिए चुने।

उसे मालूम था कि पहले शहर में एक खास दिन, एक खास समय सूर्य किरणों से खंभे की छाया नहीं बनती थी। उस दिन उसी समय अगर आप दूसरे शहर में एक ऐसे ही खंभे का अवलोकन करें तो उसकी छाया मौजूद होती थी। उसने छाया की लंबाई नापी और फिर साधारण ज्यामिति का इस्तेमाल करते हुए सूर्य की दूरी ज्ञात की।

सामने वाले चित्र को देखिए – खंभे और छाया द्वारा बनाई गई त्रिभुज और सूर्य व दोनों शहर द्वारा बनाई गई त्रिभुज दोनों समरूप हैं इसलिए:

$$\frac{\text{खंभे की ऊंचाई}}{\text{खंभे की छाया की लंबाई}} = \frac{\text{सूर्य-पृथ्वी दूरी}}{\text{दोनों शहरों के बीच की दूरी}}$$

इस गणना के आधार पर उसने सूर्य-पृथ्वी की दूरी का मान 6500 कि.मी.

अगर आप यह प्रयोग सुबह या शाम को करें तो दीवार पर छाया बना पाना आसान होगा। दीवार पर बन रही छवि को नापना आसान होता है। कागज़ इस तरह पकड़ना होगा कि उसकी छाया और आपने जो छेद बनाया है, दोनों आपको स्पष्ट दिखाई दें। सुनिश्चित कीजिए कि छवि का आकार ठीक वैसा हो जैसा छेद का था, यानी कि दीवार या पर्दा सूर्य किरणों के लंबवत हो और कागज़ दीवार के समानान्तर हो।

अब कोण बदले बिना कागज़ को धीरे-धीरे दीवार से दूर लेकर जाइए। आपको क्या दिखता है?

पाया। आज हमें मालूम है कि यह जवाब सही नहीं है। सवाल है कि उसने क्या गलती की?

उसके अवलोकन सही थे, उसने दूरियां भी काफी सटीकता से नापी, इसके बावजूद कि उन दिनों दो शहरों के बीच की दूरी मापना काफी कठिन काम था।

उसके सिद्धान्त में कोई गलती नहीं थी, न ही अवलोकनों में; परन्तु चूक थी एक मान्यता में जिस पर सिद्धांत आधारित था। चित्र को फिर से देखें। यह ठीक वैसे ही बनाया गया है जिस तरह से एनेक्सेगोरस ने कल्पना की थी। आपको भी शायद गलती दिख गई होगी – इस चित्र में दोनों शहरों को एक सरल रेखा जोड़ रही है जबकि पृथ्वी की सतह सपाट नहीं है।
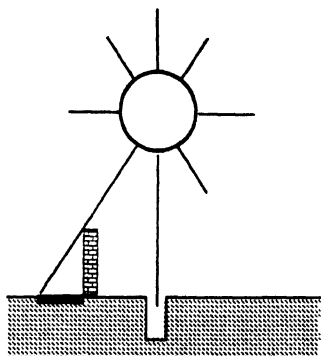
अगर उसने धरती की गोलाई को ध्यान में लेते हुए गणनाओं में सुधार किया होता तो उसे कहीं बेहतर परिणाम मिलता। परन्तु मज़ेदार बात यह है कि अपने सवाल का हल ढूंढने के बजाय उसने इस प्रक्रिया में किसी दूसरे ही सवाल का जवाब ढूंढ लिया था। दरअसल 6500 किमी का यह आंकड़ा पृथ्वी की त्रिज्या है जो उसने अनजाने में ढूंढ निकाली थी। इरेटोसथिनस ने दो सौ साल बाद यानी ईसा पूर्व तीसरी सदी में, धरती को गोलाकार मानते हुए इसी प्रयोग से पृथ्वी की त्रिज्या का पता लगाया। लेकिन पृथ्वी से सूर्य की दूरी पता करने में अभी और लंबा सफर तय होना था।

जब मैंने इस प्रयोग को करके देखा तो मेरे अवलोकन कुछ इस प्रकार थे:

क – जैसे-जैसे दूरी बढती या घटती है, तो गोल छवियों का आकार भी बड़ा-छोटा होता है।

ख – एक विशेष दूरी के बाद दोनों छवियों का आकार (साइज़) लगभग बराबर बना रहता है।

ग – इस स्थिति में एक छवि, दूसरी छवि से चमकीली ज़रूर होती है, परन्तु दोनों का आकार लगभग बराबर होता है।

पृथ्वी-सूर्य की दूरी और सूर्य के व्यास में संबंध

इन अवलोकनों के आधार पर हम कुछ मापन करेंगे। शुरुआत कागज़ को दीवार से तीन मीटर दूर रखते हुए नाप लेकर कर सकते हैं। इस स्थिति में छवि का व्यास माप लें। अब कागज़ और दूर लेकर जाएं। लगभग 5 मीटर की दूरी पर कागज़ रखकर छवि के व्यास का नाप फिर से दोहराएं। हर बार आपको कागज़ से छाया (दीवार) की दूरी मापनी है, और छवि का आकार मापना है। अगर आपको लगे कि कागज़ में छेद का आकार इतना छोटा है कि आप ठीक से माप नहीं ले पा रहे तो आप छत या खिड़की के किसी छेद को अपना पिन होल मानकर, छेद से छवि की दूरी और छवि का व्यास माप सकते हैं।

मैं कोई बाजीगर नहीं हूं परन्तु फिर भी आपसे इतना दूर रहते हुए भी, मुझे मालूम है कि आपका माप क्या आएगा!

संभवत: दूरी और व्यास के अनुपात के बारे में आपका जवाब छेद के आकार, साइज़, प्रयोग की तारीख व समय से पूर्णत: स्वतंत्र है। वह होगा – 110

मैं आपके नाप के बारे में इतने आत्मविश्वास से कैसे कह पा रहा हूं, इसे समझने के लिए आइए साधारण स्कूलीय ज्यामिती को याद करें। नीचे बनाए चित्र पर एक नज़र डालें। क्या यह चित्र आपके द्वारा किए गए प्रयोग को प्रदर्शित करता है? ध्यान रहे कि यह चित्र अनुपातिक नहीं है।
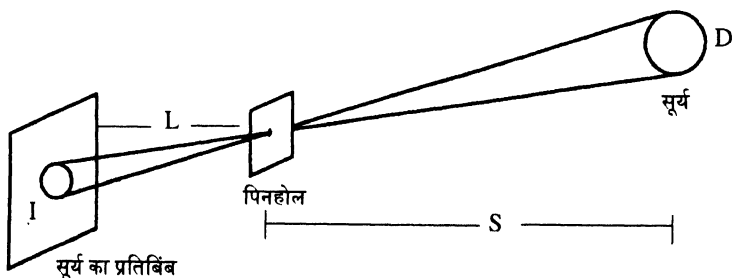
आइए यह मान लें कि –

I = छवि यानी प्रतिबिंब का व्यास
L = कागज़ से दीवार पर बने प्रतिबिंब की दूरी
S = सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी
D = सूर्य का व्यास

चूंकि एक-दूसरे को काट रही दो सरल रेखाओं के दोनों विपरीत कोण समान होते हैं इसलिए हम देख सकते हैं कि दोनों त्रिभुज समरूप हैं।

इसलिए $L/I = S/D$

क्योंकि आपके द्वारा मापी गई दूरियों का अनुपात S/D के बराबर होने वाला है, और चूंकि S व D दोनों नाप निश्चित हैं, इसीलिए मैं पक्के तौर पर कह सकता हूं कि आपके अवलोकन भी मेरी गणनाओं के बराबर ही होंगे, जो कि लगभग 110 का अनुपात बताती हैं।

इसलिए हमें जो पहली जानकारी प्राप्त होती है वह इस प्रकार है:

$L/I = S/D \sim 110$ .... (1)

इसका अर्थ है कि सूर्य के व्यास की तुलना में, वह पृथ्वी से 110 गुना ज़्यादा दूर है।

हमारा मकसद था कि हम सूर्य की पृथ्वी से दूरी पता करें। इस समीकरण से हमें यह दूरी सूर्य के व्यास के रूप में प्राप्त हो गई है। अब हमें बस सूर्य के व्यास का पता लगाना है! इसे कैसे मापें?

शुक्र से सूर्य कितना बड़ा – ग्रहण से मिलेगा जवाब

आमतौर पर कोई भी दूरी नापने के लिए हम स्केल या टेप का इस्तेमाल करते हैं। परन्तु सूर्य के आकार की कोई चीज़ मापने के लिए हमारा पैमाना या यंत्र भी उतना ही विशाल होना पड़ेगा। इसलिए हम एक अन्य खगोलीय पिंड की मदद लेंगे। हम अपनी मापपट्टी के रूप में शुक्र ग्रह का इस्तेमाल करेंगे।

यह एक विशेष वर्ष है। 8 जून 2004 को पृथ्वी, शुक्र और सूर्य एकदम सीधी रेखा में होंगे। इसलिए हम शुक्र को सूर्य के सामने से गुज़रते देखेंगे। यह घटना सूर्य ग्रहण जैसी ही है परन्तु अंतर इतना ही
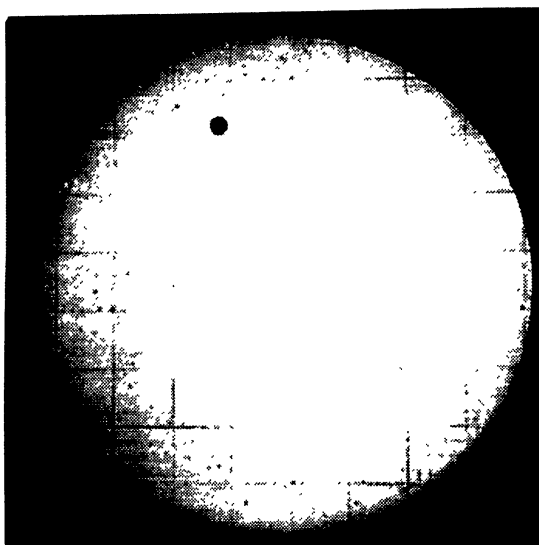
1882 में शुक्र द्वारा सूर्यग्रहण की घटना का एक फोटोग्राफ

है कि सूर्य और पृथ्वी के बीच में चांद नहीं बल्कि शुक्र होगा। चूंकि चांद पृथ्वी के बहुत नज़दीक है इसलिए उसकी छाया काफी बड़ी होती है और सूर्य को लगने वाला ग्रहण भी बड़ा होता है। जब शुक्र, सूर्य के सामने से गुज़रता है तो यह घटना हमें दोनों, यानी सूर्य और शुक्र के तुलनात्मक आकार मापने का बहुत अच्छा मौका प्रदान करती है।

इसलिए 8 जून को आपको शुक्र को सूर्य के सामने से गुज़रते देखना होगा और दोनों के तुलनात्मक व्यास मापने होंगे। ऐसा करने के लिए **सूर्य की तरफ सीधा देखने का तो सवाल ही नहीं उठता** – आपको ऐसी कोशिश बिल्कुल भी नहीं करनी चाहिए। आपको दीवार या फर्श पर सूर्य की छवि प्राप्त करके यह अनुपात निकालना होगा। इसी अंक में एक आसान-सा टेलिस्कोप बनाकर सूर्य का प्रतिबिम्ब प्राप्त करने का तरीका भी बताया गया है।

शुक्र द्वारा सूर्यग्रहण की आखिरी घटना सन् 1882 में देखी गई थी। उस समय के शुक्र-सूर्य ग्रहण का फोटो हम यहां दे रहे हैं, और इस लेख में दिए गए नापों के लिए उसका इस्तेमाल करेंगे। परन्तु इस बार

पारगमन कब-कब

काफी पहले से खगोलविद यह सोचते रहे हैं कि जब बुध और शुक्र ग्रह सूर्य के सामने से गुज़रते हैं तो उन्हें सूर्य की चकती पर एक काले बिन्दु के रूप में दिखाई देना चाहिए। 12वीं सदी के एक अरब खगोलविद अलपेट्राजियस ने अपने अवलोकनों में पाया कि बुध कभी भी सूरज के सामने से गुज़रते हुए काले बिन्दु के रूप में दिखाई नहीं देता। इसलिए उसने अनुमान लगाया कि बुध ग्रह का अपना प्रकाश का स्रोत है या वह पारभासी है। उस दौर में टेलिस्कोप नहीं थे, स्वाभाविक है कि आंखों से जितना दिखाई दे उसे आधार मानकर अवधारणाएं बनती थीं।

बुध का आकार काफी छोटा होने की वजह से उसे खुली आंखों से पारगमन करते यानी सूर्य के सामने से गुज़रते हुए देख पाना कठिन था। लेकिन शुक्र आकार में काफी बड़ा था इसलिए इसे पारगमन करते देख पाना संभव था। केपलर ने अपनी गणनाओं के आधार पर बताया कि सन् 1631 में शुक्र ग्रहण की घटना होने वाली है। इसके बाद पारगमन की अगली घटना आठ साल बाद 4 दिसंबर 1639 में हुई जिसे टेलिस्कोप से छवि प्राप्त करके शायद पहली बार देखा गया। बाद में की गई सूक्ष्म गणनाओं से शुक्र पारगमन के बारे में कई बातें मालूम हुईं। जैसे पारगमन कि यह घटना सिर्फ जून और दिसंबर के महीने में ही होती है और दो पारगमन में बारी-बारी (113 ± 8) व 8 साल का अंतराल होता है। बतौर जानकारी यहां पिछले और आगे होने वाले कुछ शुक्र-ग्रहणों का ब्यौरा दे रहे हैं:

5 जून 1761, 3 जून 1769

8 दिसंबर 1874, 6 दिसंबर 1882

8 जून 2004, 5 जून 2012

11 दिसंबर 2117, 8 दिसंबर 2225

इस साल 8 जून को यह घटना दिन में भारतीय समय के मुताबिक 10:46 से शुरू होगी और शाम 4:50 तक चलेगी। इस समय पृथ्वी पर कोई भी इंसान ऐसा नहीं होगा जिसने यह घटना देखी हो क्योंकि इससे पहले यह 1882 में घटी थी।

का आंकड़ा तो आपको अपने अवलोकनों और गणनाओं से निकालना होगा।

इस फोटो में दिखाए गए सूर्य का व्यास अत्यन्त बारीकी से नापें। इसे D कहेंगे। इसी तरह फोटो में दिख रहे शुक्र ग्रह का व्यास भी उतनी ही बारीकी से नापें। (हां, चित्र में दिख रहा वही काला धब्बा शुक्र है)। इसे हम V कहेंगे। इन दोनों नापों को आपस में भाग देने से आपको लगभग 33 का अनुपात मिलेगा।

यानी कि $D/V = 33$ .... (2)

इसका क्या यह मतलब हुआ कि सूर्य का व्यास, शुक्र के व्यास की तुलना में 33 गुना है? आपको याद होगा कि पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय चांद सूर्य को पूरा ढक लेता है। उसका अर्थ यह तो नहीं कि सूर्य व चांद का व्यास बराबर है! यानी कि सूर्य और शुक्र के व्यास में सही अनुपात प्राप्त करने के लिए हमें यह पता लगाना होगा कि शुक्र दरअसल कितनी बड़ी छाया बना रहा है, या इस चित्र में कितना बड़ा दिख रहा है।

परन्तु यह पता लगाने से पहले एक और अवलोकन देख लेते हैं।

शुक्र केवल सुबह और शाम को नज़र आता है और वह कभी भी हमारे सिर के ऊपर तक नहीं पहुंचता। हम देखना चाहते हैं कि शुक्र आकाश में कहां तक ऊपर आता है। इसके लिए आपको शुक्र को हर महीने देखना होगा और तय करना होगा कि उसकी सबसे ऊपर उठने की स्थिति कौन-सी है। हमें रोज़ कोण मापना होगा और अपने अवलोकन नोट करते रहना है। परन्तु इसके लिए सबसे पहले हमें कोण मापने का यंत्र बनाना होगा।

आइए कोणमापी बनाएं

एक गत्ते का टुकड़ा लें। उसके एक किनारे पर बीच में एक खांचा बना लें। धागे के टुकड़े के दोनों छोर पर पत्थर बांध उसे इस खांचे से चित्र में दिखाए अनुसार लटका दें।

इस गत्ते के टुकड़े को एकदम क्षैतिज पकड़ने पर, इस दोलक का धागा किनारे के एकदम लंबवत होगा। ऐसी स्थिति में धागे की सीध में गत्ते पर एक लंबवत रेखा बना लें। यह हमारी संदर्भ रेखा होगी जिसकी तुलना में हम खगोलीय पिंडों के कोण नापेंगे। किसी भी तारे या ग्रह का

कोण नापने के लिए हम इस कोण मापी को चित्र में दिखाए अनुसार उस पिंड की सीध में रखेंगे और धागे की सीध में एक रेखा खींच देंगे। अब गत्ते को ज़मीन पर रखकर कंपास में मौजूद चांदे के ज़रिए कोण माप लेंगे।

इस तरह हम रोज़ सूर्यास्त के समय शुक्र का कोण नापेंगे। यह कोण सितंबर से मार्च तक हर रोज़ बढ़ेगा और फिर कम होने लगेगा। इस तरह हर रोज़ या हर हफ्ते नाप लेते हुए हम पता कर पाएंगे कि अधिकतम कोण कितना बनता है। मार्च के अंत में यह 47^0 तक ऊपर उठ जाएगा। यही अधिकतम कोण होगा। अपनी सुविधा के लिए हम इसे 45^0 मान लेंगे जिससे आगे की गणनाएं आसान हो जाएंगी।

पृथ्वी और शुक्र – सूर्य से कौन कितना दूर

अब हम उस दिन ग्रहों की स्थिति प्रदर्शित करने की कोशिश करते हैं जब शुक्र अधिकतम ऊंचाई पर हो।

धागे के दोनों सिरों पर पत्थर बांधकर धागे को कोणमापी के खांचे में लटका लीजिए।
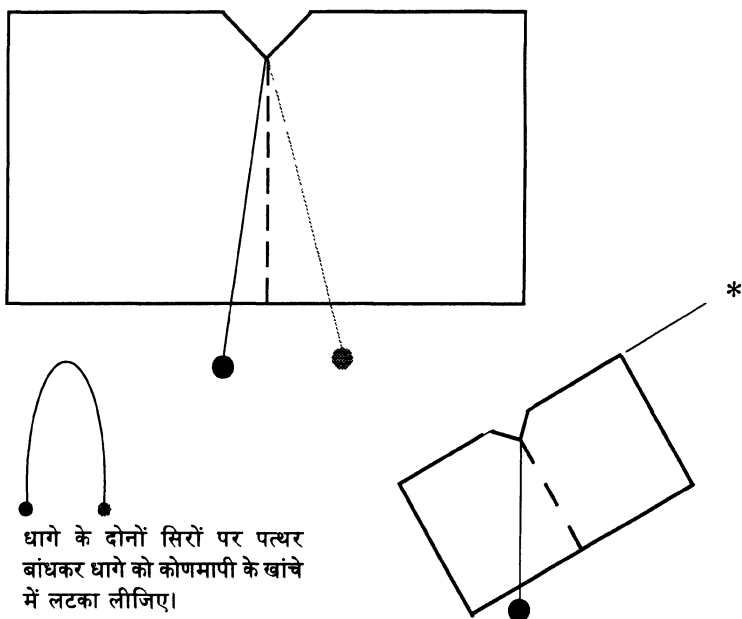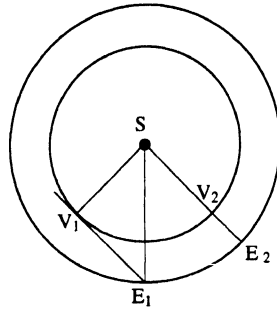
चूंकि इस दिन पृथ्वी से देखने पर शुक्र अधिकतम कोण बना रहा है, इसलिए कोण $S - E_1 - V_1$ 45^0 है। और चित्र देखने से स्पष्ट होता है कि इस दिन पृथ्वी-शुक्र को जोड़ती रेखा, शुक्र के कक्ष के टेन्जेंशियल होगी यानी शुक्र के कक्ष की स्पर्श रेखा होगी। अगर यह मान लें कि शुक्र का परिभ्रमण कक्ष वक्राकार है (अंडाकार नहीं जैसा कि हम जानते हैं) तो यह स्पर्श रेखा त्रिज्या से 90^0 का कोण बनाएगी। एक कोण नब्बे अंश का और दो कोण पैंतालिस अंश के बनने के कारण $E_1 - V_1 - S$ समकोण समद्विबाहु (Isosceles) त्रिभुज होगा।

यानी कि उस दिन पृथ्वी और शुक्र की दूरी, शुक्र और सूर्य की दूरी के बराबर होगी। और पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी इन दोनों में से किसी भी एक का $\sqrt{2}$ गुना होगी (क्योंकि SE_1 इस समकोण त्रिभुज का कर्ण है)।

यानी कि

पृथ्वी सूर्य दूरी = $\sqrt{2}$ x शुक्र-सूर्य दूरी

पृथ्वी-सूर्य दूरी/शुक्र-सूर्य दूरी = $\sqrt{2}$ .... (3)

शुक्र और शुक्र की छाया

अब हम फिर से 8 जून की स्थिति को देखें। उस दिन शुक्र एकदम पृथ्वी और सूर्य की लाईन में है।

इस चित्र से स्पष्ट है कि त्रिभुज $E - V - V_1$ और त्रिभुज $E - S - S_1$ समरूप त्रिभुज हैं। इसलिए उनकी भुजाओं का अनुपात बराबर होगा।

शुक्र कभी भी मध्यरात्रि को क्यों नहीं दिखाई देता?

शुक्र एक मज़ेदार ग्रह है (शायद अलग-अलग पहलुओं से देखने पर सभी ग्रह उतने ही मज़ेदार नज़र आएंगे!)। आपने शायद ध्यान दिया होगा कि शुक्र केवल सुबह-शाम को ही दिखता है – काफी सारे अन्य ग्रहों की तरह साल भर किसी भी दिन मध्यरात्रि को नहीं दिखाई देता। मंगल, गुरू, शनि आदि अक्सर मध्यरात्रि को भी दिखाई दे जाते हैं। क्या आप सोच सकते हैं कि शुक्र के ऐसे व्यवहार का कारण क्या है?

सौर्य मंडल में 9 प्रमुख ग्रह हैं जो सूर्य के इर्द-गिर्द परिक्रमा करते हैं। सूर्य से सबसे नज़दीक बुध है, उसके बाद शुक्र और फिर पृथ्वी की बारी आती है। और आगे बढ़ने पर मंगल... और फिर अंत में प्लूटो।
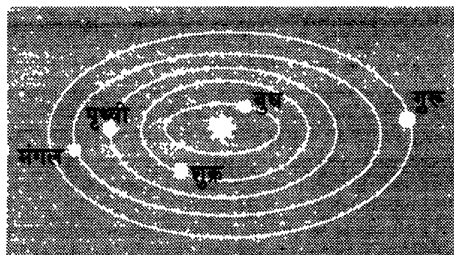
चित्र अनुपातिक नहीं है, सिर्फ समझने के लिए है।

ऊपर दिए गए चित्र को देखें। जब भी पृथ्वी पर खड़ा कोई व्यक्ति शुक्र को देखता है तो शुक्र अपने कक्ष में कहीं भी हो, हमें सूर्य की तरफ ही देखना पड़ता है। चूंकि सूर्य एक तारा है और अत्यन्त चमकीला है, इसलिए जब भी शुक्र दिन के समय सूर्य की दिशा में हो तो वह दिखाई नहीं देता। इसलिए बुध और शुक्र को हम केवल सूर्योदय या सूर्यास्त के समय ही देख सकते हैं।

अब मंगल को देखिए, चूंकि हमारी तुलना में वह सूर्य से और दूर है इसलिए हम उसे रात के समय भी देख पाते हैं – पृथ्वी के जब वह बाईं तरफ हो, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। यानी कि जिस तरफ सूर्य है उसके विपरीत दिशा में मंगल हो तो वह रात को भी दिखाई देगा। यह चित्र जून माह में ग्रहों की स्थिति को ध्यान में रखकर नहीं बनाया गया है फिर भी इस चित्र को देखकर बताइए गुरु को रात में देखा जा सकेगा या नहीं?

यानी कि
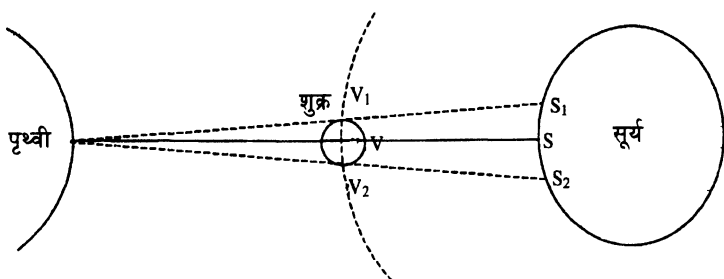
$$\frac{\text{पृथ्वी-शुक्र की दूरी}}{\text{शुक्र का व्यास}} = \frac{\text{पृथ्वी-सूर्य की दूरी}}{\text{शुक्र की छाया का व्यास}}$$

$$\frac{\text{शुक्र का व्यास}}{\text{शुक्र की छाया का व्यास}} = \frac{\text{8 जून को पृथ्वी-शुक्र की दूरी}}{\text{पृथ्वी-सूर्य दूरी}}$$

$$= \frac{(\text{सूर्य-पृथ्वी दूरी} - \text{शुक्र-सूर्य दूरी})}{\text{पृथ्वी-सूर्य की दूरी}}$$

$$= 1 - \frac{\text{शुक्र-सूर्य दूरी}}{\text{पृथ्वी-सूर्य की दूरी}}$$

इस समीकरण में समीकरण 3 का अनुपात डालने पर :

$$\frac{\text{शुक्र का व्यास}}{\text{शुक्र की छाया का व्यास}} = 1 - \frac{1}{\sqrt{2}} = 0.293$$

$$\text{शुक्र की छाया का व्यास} = \text{शुक्र का व्यास}/0.293$$

$$= 3.4 \times \text{शुक्र का व्यास} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (4)$$

सूर्य के विभिन्न माप

शुक्र-सूर्य ग्रहण के फोटो से हमने समीकरण-2 में पता किया था कि
सूर्य का व्यास/शुक्र की छाया का व्यास = 33

इसमें समीकरण-4 से प्राप्त शुक्र की छाया का व्यास रखने पर:
सूर्य का व्यास = 33 × 3.4 × शुक्र का व्यास
= 112 × शुक्र का व्यास

इसलिए
सूर्य का व्यास/शुक्र का व्यास = 112 .... (5)

अब हमारे पास सूर्य का व्यास शुक्र के रूप में उपलब्ध है और हम जानते हैं कि पृथ्वी से सूर्य की दूरी, सूर्य के व्यास का 110 गुना है। इसलिए:
पृथ्वी से सूर्य की दूरी = 110 × 112 × शुक्र का व्यास

मंज़िल आ ही गई!

इस तरह आखिरकार हम जिस दूरी को मापना चाहते थे वो हमारे पैमाने यानी शुक्र ग्रह के व्यास के रूप में प्राप्त हो गई है। अब बच यही जाता है कि इस पैमाने को अंकित (Calibrate) किया जाए। यह भी आसानी से संभव है अगर हम एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुमान लगाएं। हम मान लेते हैं कि पृथ्वी और शुक्र का आकार लगभग एक जितना है।

यह मान्यता एकदम ठीक नहीं है परन्तु हमारे अन्य अवलोकनों जितनी सटीकता तो इसमें भी है। इसलिए इस मान्यता से भी हमें काफी ठीक-ठाक जवाब मिल जाएगा।

पृथ्वी-सूर्य की दूरी = 110 × 112 × पृथ्वी का व्यास .... (6)

इस तरह हमें यह दूरी खगोलीय पैमाने पर नहीं बल्कि अपनी पृथ्वी पर आधारित पैमाने के रूप में प्राप्त हो गई!

अब या तो पृथ्वी के व्यास के बारे में जो जानकारी हमें मालूम है उसे इस समीकरण में रखकर गणना कर लें – या फिर अभी तक जिस रास्ते आगे बढ़े थे, उसी अंदाज़ में प्रयोग करते हुए यह माप भी खुद निकालें।

ग्रहण किस्म-किस्म के

जब भी ग्रहण की बात होती है तो सबकी ज़ुबान पर सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण का नाम सबसे पहले आता है। लेकिन हमारे आकाश में इन दो के अलावा और भी ग्रहण लगते हैं मसलन शुक्र, बुध का सूर्य की चकती के आगे से गुज़रना। इसी तरह बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपच्यून के काफी सारे उपग्रह हैं इसलिए वहां तो ग्रहण की ढेरों संभावनाएं हैं।

जैसे मंगल की ही बात करें तो इसके दो उपग्रह हैं – फोबोस और डिमोस। यदि आप मंगल के 0^0 अक्षांश यानी कि मंगल -मध्य रेखा पर खड़े हैं तो आप इन दोनों उपग्रहों को सूर्य की चकती के सामने से गुज़रता हुआ देख सकते हैं। एक मंगल वर्ष (689 दिन) में फोबोस को 1300 बार ट्रांज़िट करते देखा जा सकता है, और हर बार उसे सूर्य की चकती के सामने से गुज़रने में लगेगा तकरीबन 19 सेकेंड का समय।

डिमोस एक मंगल वर्ष में 130 बार ट्रांज़िट करता दिखाई देता है। हर बार ट्रांज़िट में लगने वाला समय होता है तकरीबन 1 मिनट और 48 सेकेंड। अभी तो हमने सिर्फ मंगल की ही बात की है, जिन ग्रहों के पास ढेरों उपग्रह हैं, वहां ग्रहणों की बात सोचकर ही रीढ़ की हड्डी में सिहरन होने लगती है।

अब जब आप मंगल पर खड़े ही हैं तो एक और रोचक जानकारी देना चाहेंगे – यदि आप मंगल पर सन् 2084 की नवंबर तक बने रहते हैं तो आप एक और नज़ारा देख सकेंगे। और वह नज़ारा है ट्रांज़िट ऑफ अर्थ। यानी मंगल पर खड़े होकर आप पृथ्वी को सूर्य की चकती के सामने से गुज़रते हुए देख पाएंगे। मंगल से ट्रांज़िट ऑफ अर्थ देख पाने के मौके कम ही मिलते हैं। पिछली सदी में मई 1905 और मई 1984 को ऐसे मौके आए थे। 1984 में मंगल से देखते हुए पृथ्वी को सूरज की चकती पार करने में साढ़े आठ घंटे का समय लगा था। अब अगला अवसर नवंबर 2084 और नवंबर 2163 में मिलेगा।

एक और किस्म का ग्रहण है जिसकी ओर हमारा ध्यान कम ही जाता है। कभी-कभार अखबारों में खबर छपे तो ही पता चल पाता है कि कोई तारा या ग्रह कुछ देर के लिए चांद के पीछे छुप रहा है। इसी तरह बुध, शुक्र, बृहस्पति के पीछे भी कई बार कुछ तारे छिप जाते हैं। इस घटना को Occultation कहते हैं। यदि आपको याद हो तो डेढ़-दो साल पहले शनि ग्रह चांद के पीछे छुप गया था। इस घटना को भारत में भी देखा गया था।

पृथ्वी का व्यास

पृथ्वी का व्यास पता करने के कई तरीके हैं। उनमें से हम यहां एक ऐसे तरीके का ज़िक्र कर रहे हैं जो स्कूल में पढ़ने वाला कोई भी विद्यार्थी अपना सकता है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह तरीका केवल वहीं इस्तेमाल किया जा सकता है जहां पर सूर्य को समंदर में अस्त होता देखा जा सके – यानी कि भारत के पश्चिम समुद्री तट पर कहीं भी यह तरीका अपनाया जा सकता है।

आपको पश्चिमी समुद्री तट के पास कोई ऊंची इमारत ढूंढनी होगी। इस प्रयोग के लिए आपको अपने एक दोस्त की भी ज़रूरत होगी। आपका दोस्त ज़मीन पर खड़ा रहेगा और आप इमारत के ऊपर, जहां से आप पश्चिमी क्षितिज और अपने दोस्त दोनों को देख पाएं। किसी ऐसी शाम जब आकाश पर बादल न हों, आप यह प्रयोग कर सकते हैं। जब सूर्य अस्त हो रहा हो तो आपका दोस्त अपना हाथ ऊपर किए खड़ा रहेगा। जिस क्षण उसे दिखे कि सूर्य का अंतिम छोर समुद्र में अस्त हो गया है, वो अपना हाथ नीचे कर देगा। यह इशारा मिलते ही आप समय की गिनती करना शुरू कर देंगे – उसी पत्थर और धागे से बने दोलक का दोलन शुरू करके या स्टॉप वॉच चालू करके। इमारत के ऊपर खड़े होने की वजह से आपको अभी भी सूर्य दिखाई देगा। समय की गिनती तब तक जारी रखें जब तक कि आपके लिए भी सूर्य पूरी तरह डूब न जाए। आइए इस समयांतर को T सेकंड कहें।

अब दूसरा काम है उस इमारत की ऊंचाई नापना, जिस पर चढ़कर आपने प्रयोग किया। यह पता करने के भी बहुत सारे आसान तरीके हैं। आप इमारत की छाया के आधार पर अंदाज़ा लगा सकते हैं, या फिर इमारत से इतनी दूरी पर पहुंच जाएं जहां से इमारत का ऊपरी हिस्सा 45^0 का कोण बनाता दिखाई दे। स्वाभाविक है कि आपको यह कोण कोण-मापी के ज़रिए मापना होगा। और फिर बस आप जहां खड़े हैं वहां से इमारत तक की दूरी माप लें। यही उस इमारत की ऊंचाई है। आइए, इस ऊंचाई को H कहें।

अब आगे दिया हुआ चित्र देखें। इसमें R पृथ्वी की त्रिज्या है और H इमारत की ऊंचाई है। X वह दूरी है जहां तक आप इमारत के ऊपर से देख सकते हैं।

$$X^2 + R^2 = (R+H)^2$$
$$= R^2 + 2RH + H^2$$
$$X^2 = 2RH + H^2$$

हम H^2 को नज़रअंदाज़ कर सकते हैं क्योंकि 2RH की तुलना में यह नगण्य है।

इसलिए $X^2 = 2RH$
$$X = \sqrt{2RH}$$
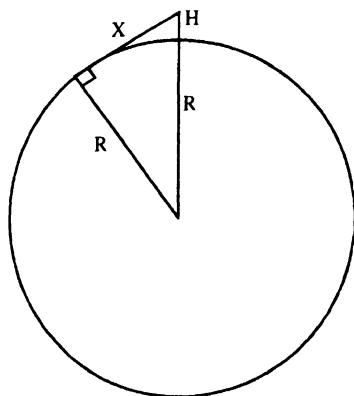
चूंकि X वह दूरी है जहां तक आप इमारत के ऊपर से देख सकते हैं, इसलिए आप जो कुछ अतिरिक्त समय सूर्य को देख पाए – पृथ्वी को X दूरी घूमने के लिए लगा समय है वह।

हम जानते हैं कि पृथ्वी को अपनी धुरी के इर्द-गिर्द एक चक्कर लगाने में 24 घंटे लगते हैं, यानी 86,400 सेकंड। यानी कि T सेकंड में पृथ्वी अपनी परिधि का T/86,400 गुना घूम गई होगी।

यानी X = T x पृथ्वी की परिधि / 86,400

$$= T \times 2\pi R / 86{,}400 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (7)$$

पायथागारस के नियम का इस्तेमाल करते हुए हमने ऊपर के चित्र में देखा था कि

$$X = \sqrt{2RH} \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (8)$$

समीकरण 7 और 8 की तुलना करने पर

$$X = T \times 2\pi R / 86{,}400 = \sqrt{2RH}$$

$$R/\sqrt{R} = (86{,}400/T) \times (\sqrt{2H}/2\pi)$$

$$\sqrt{R} = (86{,}400/T) \times (\sqrt{H}/\sqrt{2}\pi)$$

$$R = (86{,}400/T)^2 \times H/2\pi^2 \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (9)$$

अब फिर से समीकरण 6 को याद करते हैं – यानी हमारे असली सवाल का हल:

सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी = $110 \times 112 \times 2 \times R$ .... (10)

ऊपर दिए गए इन दोनों समीकरणों में वे सब हिस्से हैं जिनके नाप हमने पता किए हैं – और जिनके आधार पर हम सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी का पता लगा सकते हैं।

तो अंत में हमने अपनी मंज़िल हासिल कर ही ली। खगोलीय दूरियां मापने की तरफ पहला कदम है यह। चाहे इस लेख ने इसे आपके लिए काफी आसान बना दिया – फिर भी यह कोई छोटा कदम नहीं है। इस लेख के ज़रिए हमने केवल रुचि पैदा करने की कोशिश ही नहीं की है बल्कि ऐसी और बहुत सारी गणनाएं करने के लिए एक आधार तैयार किया है ताकि आप ब्रह्मांड का आकार-साइज़ नापने की तरफ कदम बढ़ा पाएं!!

परन्तु यह लेख अभी भी पूरा नहीं हुआ है, क्योंकि मैंने उस दूरी का कोई आंकड़ा तो दिया ही नहीं जिसे नापने हम निकले थे। ऐसा इसलिए क्योंकि अभी आपको प्रयोग करना है और अपना परिणाम प्राप्त करना है। प्रयोग करने पर आप पृथ्वी-सूर्य की दूरी का जो आंकड़ा प्राप्त करें – वो हमें ज़रूर लिखें।

आमोद कारखानिस: कम्प्यूटर वैज्ञानिक, चित्रकार व प्रकृतिप्रेमी। मुंबई में रहते हैं।

विवेक मोन्टेरो: मूलतः भौतिकशास्त्री। वामपंथी मज़दूर संगठनों व दलों में सक्रिय। नवनिर्मिती, मुंबई के संचालक।

इस विषय पर और जानकारी प्राप्त करने के लिए देखें:

www.navnirmiti.org/tov

सूर्य का प्रतिबिंब प्राप्त करने के कुछ तरीके अगले पृष्ठों पर दिए जा रहे हैं। →

पिनहोल के ज़रिए सूर्य का प्रतिबिम्ब
कुछ अवलोकन, कुछ व्याख्या

अक्सर सबने स्कूल में पिन होल केमेरा के बारे में पढ़ा होता है। कुछ ही दिन पहले कुछ बच्चों के साथ पिन होल केमेरा बनाने के प्रयोग कर रहे थे, जिसमें हमने सबसे पहले अपना-अपना पिन होल केमेरा बनाने से शुरुआत की। परन्तु केमेरा बनाते समय सबने अलग-अलग साइज़ के छेद बनाए – और हम सबको एक जैसी छवि प्राप्त करने के लिए डिब्बे की लंबाई बदलनी पड़ी। यह समझने के लिए कि ये अंतर क्यों आता है हमने नीचे दिए कुछ प्रयोग किए।

1. एक कार्डशीट या गत्ते के टुकड़े पर सफाई से अलग-अलग आकार और साइज़ के बहुत-से छेद किए।
2. फिर छेद वाली इस कार्डशीट को सूर्य की रोशनी में ज़मीन के पास रखा और उसकी छाया का अवलोकन किया। सब छेद की छवि एकदम स्पष्ट व साफ थी – वैसे ही आकार की जिस तरह के छेद बनाए गए थे।
3. फिर हम कार्डशीट को धीरे-धीरे ज़मीन से दूर लेकर गए और ज़मीन पर बन रही छवियों को ध्यान से देखते रहे। हमने पाया कि कुछ देर बाद यानी दूरी बढ़ाने पर सब छवियां धुंधली बनने लगीं और सबकी सब गोलाकार स्वरूप लेने लगीं।
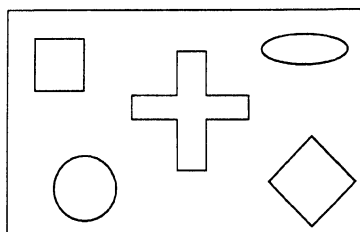
प्रयोग को आगे बढ़ाते हमने यह भी पाया कि

– दूरी घटाने-बढ़ाने पर छवि का साइज़ भी छोटा-बड़ा होता है।
– एक निश्चित दूरी के बाद सब छवियों का साइज़ लगभग एक समान होता है।
– छोटे छिद्रों की छवि एकदम साफ/स्पष्ट थी परन्तु हल्की यानी कम चमकीली थी। जबकि बड़े छेद की छवि ज़्यादा चमकीली थी परन्तु उसका भी साइज़ वही था।
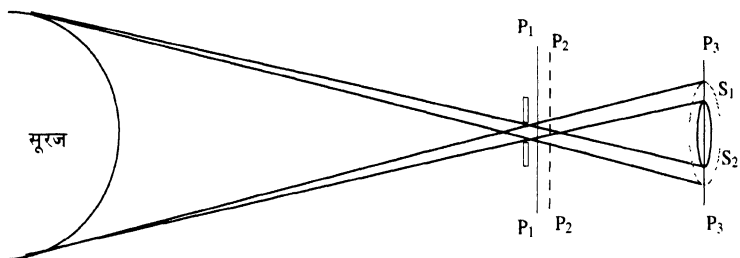
– जब हम दूरी और बढ़ाते गए तो सब छवियां आपस में घुलने-मिलने लगीं और उन सबसे एक गोला बन गया।

इसकी व्याख्या बहुत आसान है। नीचे बना चित्र देखिए–

जब ज़मीन और छेद के बीच दूरी कम होती है तो हमें छेद के आकार की छवि दिखाई देती है (जैसे P_1 स्थिति में)। परन्तु जब हम P_2 से अधिक दूरी पर चले जाते हैं जैसे कि स्थिति P_3 तो हमें जो दिखता है वह छेद की छवि नहीं है बल्कि सूर्य की एक धुंधली छवि है वह (जो वृत S_1 और S_2 के रूप में दिख रही है)।

यह चित्र अनुपातिक नहीं है क्योंकि दरअसल सूर्य के व्यास और सूर्य-पृथ्वी दूरी में 1:110 का अनुपात है। परन्तु अगर चित्र इस अनुपात में बनाएं तो वो इतना छोटा बनेगा कि हम जो अलग-अलग किरणें दिखाने की कोशिश कर रहे हैं वे सब एक-दूसरे में घुल-मिल जाएंगी।

अगर छेद का आकार छोटा हो तो वृत S_1 व S_2 में अंतर कम होगा इसलिए वृत/छवि ज़्यादा स्पष्ट दिखेगी। परन्तु चूंकि बारीक छेद में से रोशनी कम गुज़रती है इसलिए वह छवि चमकीली कम होगी। स्पष्ट छवि के लिए हमें कुछ दाम तो चुकाना पड़ेगा ही न!

सूर्य का प्रतिबिम्ब - एक आसान प्रयोग

सूर्य को खुली आंखों से देख पाना या कोई मापन कर पाना संभव नहीं है। यहां पर उसकी खूबसूरत छवि प्राप्त करने का आसान तरीका सुझाया गया है। आप 8 जून का शुक्र-सूर्य ग्रहण देखने के लिए इसे अत्यन्त उपयोगी पाएंगे!

यह प्रयोग ऐसे किसी भी कमरे में किया जा सकता है जिसका कोई दरवाज़ा या खिड़की बाहर खुलता हो। यह भी देख लीजिए कि खिड़की-दरवाज़े पर पर्दा डालकर इस कमरे को पर्याप्त अंधेरा किया जा सकता है। घुप्प अंधेरे की ज़रूरत नहीं है, प्रयोग करते वक्त आप खुद तय कर पाएंगे कि कितना अंधेरा पर्याप्त होगा।
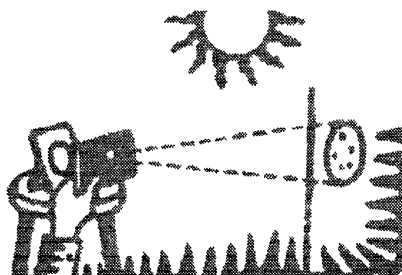
कोई भी एक छोटा-सा दर्पण ले लीजिए। चेहरा देखने वाला कोई दर्पण भी चलेगा। दर्पण का आकार कैसा है उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

कमरे के बाहर इसे किसी ऐसी जगह पर स्टूल/कुर्सी पर रखें जहां इस पर सूर्य की रोशनी पड़ रही हो। दर्पण का कोण इस तरह से बदलिए ताकि परावर्तित प्रकाश का चमकीला टुकड़ा अंधेरे कमरे की किसी दीवार पर आए। दर्पण की दूरी बढ़ाकर लगभग 30 मीटर तक पहुंचा दें। जैसे-जैसे आप दूरी बढ़ाते जाएंगे, कमरे के अंदर आने वाला प्रकाश, वृत्त का आकार लेने लगेगा (दर्पण का आकार कुछ भी हो)। यह वृत्ताकार ज़रूर बन जाता है परन्तु बहुत स्पष्ट नहीं होता, हमें इसका धुंधलापन कम करना होगा।

इसके लिए हमें दर्पण से बड़ा अपारदर्शी कागज़ या कार्डशीट का एक टुकड़ा लेना होगा। इसमें 2-3 मि.मी. का एक छोटा-सा सुराख बना लें – चाहे तो

सामान्य पंच से भी सुराख बना सकते हैं। अब इस कागज़ को दर्पण के सामने लगभग 30 से.मी. की दूरी पर इस तरह से रखें ताकि कागज़/कार्डशीट दर्पण से परावर्तित प्रकाश को अवरुद्ध करे। कागज़ को प्रकाश किरणों के एकदम लंबवत रखें। अब कमरे के अंदर दीवार पर बन रही छवि को देखें।

हैरानी की बात है कि छवि का साइज़ छोटा नहीं होता जबकि अब हमने दर्पण की तुलना में एक बहुत छोटा सुराख बनाया है। छवि की तीव्रता ज़रूर कम हो जाएगी, परन्तु अब वह ज़्यादा स्पष्ट दिखेगी। दीवार पर जहां पर प्रतिबिम्ब बन रहा है वहां आप एक सफेद कागज़ चिपका सकते हैं ताकि छवि और भी बेहतर हों और आप बारीकी से माप ले सकें।

इस तरीके से आपको प्राप्त होने वाली छवि का व्यास लगभग 30 से.मी. होगा। 8 जून 2004 को जब शुक्र, सूर्य के सामने से गुज़रेगा तो आपको शुक्र की छाया लगभग एक से.मी. व्यास की काली चकती के रूप में दिखेगी।

दो और तरीके हैं सूर्य की और बेहतर छवि आसानी से प्राप्त करने के। चार से छः मीटर लंबी फोकल दूरी का एक उत्तल लेंस इस्तेमाल करेक चित्र में दिखाए अनुसार उससे दीवार पर सूर्य की छवि प्राप्त कर सकते हैं।
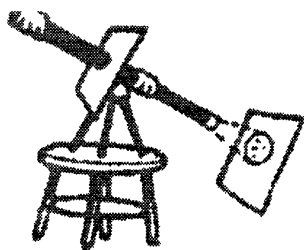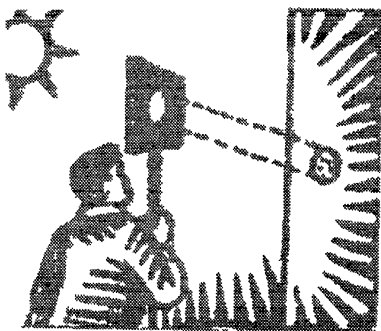
इसी तरह साधारण टेलिस्कोप से कागज़ या पर्दे पर छवि प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए टेलिस्कोप का आगे वाला लेंस लगभग 1 मीटर फोकल दूरी का हो और पीछे वाला आई-पीस 5 सेमी फोकल दूरी का हो तो अच्छा परिणाम मिलेगा।

सवालीराम

तारों के रंग अलग-अलग क्यों?

सवाल: रात के समय आसमान में दिखने वाले तारे अलग-अलग रंगों के दिखते हैं। तारों के रंगों में फर्क क्यों होता है?

जवाब: इस सवाल का एक संक्षिप्त जवाब तो यही होगा कि चूंकि तारों का तापमान भिन्न-भिन्न होता है इस लिए उनका रंग भी फर्क होता है। यानी तारों के तापमान और हमें दिखने वाले उनके रंगों में कुछ संबंध ज़रूर है।

यह हमारा काफी जाना पहचाना सा अनुभव है कि किसी धातु को अलग-अलग तापमान पर गर्म किया जाए तो वो अलग-अलग रंगों का प्रकाश पैदा करती है। संवेदनशील तापमापियों की मदद से धातुओं के तापमान और उनके द्वारा प्रदर्शित रंगों की तालिका बनाने पर पाया गया है कि किसी खास तापमान पर धातु एक खास रंग का प्रकाश उत्सर्जित करती है जैसे:

मंद लाल – 475^0 सेल्सियस

मटमैला लाल – 600^0 सेल्सियस

सुर्ख लाल – 700^0 सेल्सियस

हल्का, तेज़ लाल – 850^0 सेल्सियस

नारंगी – 900^0 सेल्सियस

पीला – 1000^0 सेल्सियस

नीला-सफेद – 1150^0 सेल्सियस से ऊपर।

इससे यह बात तो साफ हुई कि अलग-अलग तापमान पर एक ही धातु या विविध धातुएं कोई खास रंग दिखाती हैं।

जिस तरह अभी हमने धातुओं के रंगों को आधार मानकर उनके तापमान का अनुमान लगाया, उसी तरह तारों के रंगों के आधार पर उनके सतह के तापमान का अंदाज़ लगाया जाता है जैसे:

पीला रंग – तापमान 5800 केल्विन (सूर्य या ऐसे ही कुछ अन्य तारे।)

लाल रंग – तापमान 4000 केल्विन (सूर्य से कम गरम।)

नीलापन लिए हुए सफेद रंग – 8000 केल्विन (सूर्य से ज़्यादा गरम।)

इन रंगों के आधार पर हम मोटेतौर पर कह सकते हैं कि वे तारे जो हमारी आंखों को लाल दिखाई देते हैं, वे अपेक्षाकृत रूप से ठंडे या कम गरम हैं।

वे तारे जो हमें पीले दिखाई देते हैं वे मध्यम गरम हैं और जो तारे नीलापन लिए हुए सफेद दिखाई देते हैं वे सबसे ज़्यादा गरम हैं।
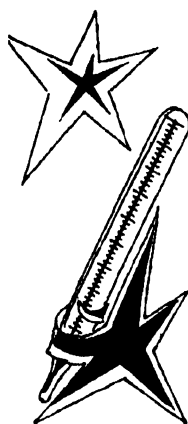
आप भी आसमान में नज़र दौड़ा कर देखिए क्या आपको ऐसे तारे दिखाई दे रहे हैं?

आंखों से दिखने वाले रंगों के साथ एक छोटी-सी दिक्कत सामने आती है, वह है – हमारी आंखों और तारे के बीच मौजूद वायुमंडल।

कई बार तो वायुमंडल से होकर आने वाले प्रकाश के रंगों में खासे बदलाव नज़र आते हैं। जैसे आपने गौर किया होगा कि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूरज का रंग संतरे जैसा लाल होता है। उसी सूरज का रंग दोपहर के समय पीला होता है। यदि ऊपर दी गई रंगों की तालिका का उपयोग करें तो सुबह और शाम के समय सूरज की सतह का तापमान 4000 केल्विन है और दोपहर के समय 5800 केल्विन! क्या आपको लगता है ऐसा संभव है?

वायुमंडल की इन बाधाओं को ध्यान में रखते हुए या तो जगह व समय के अनुसार तारे का जो रंग दिख रहा है उसमें करेक्शन यानी सुधार करना पड़ता है, या फिर ऐसी जगह ढूंढनी पड़ती है जहां वायुमंडल का असर न्यूनतम हो।

इसलिए आमतौर पर खगोल विज्ञान के अध्ययन के लिए वेधशालाएं ऊंचे पहाड़ों पर बनाई जाती हैं जहां वायुमंडल अपेक्षाकृत रूप से विरल होता है। इस सबके बावजूद चाहे आप तारों को किसी टेलिस्कोप से देख रहे हों या तारे का अध्ययन इंफ्रारेड पायरोमीटर से कर रहे हों, वायुमंडल थोड़ी-बहुत बाधा तो डालता ही है। इसीलिए पृथ्वी से अच्छी खासी दूरी पर स्थापित हब्बल टेलिस्कोप का अपना ही महत्व है।

ज़रा सिर खुजलाइए
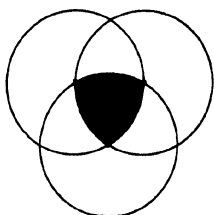
पिछले अंक में आपसे जो सवाल पूछा गया था उसमें तीन वृत्त बने थे जिनकी परिधि एक दूसरे वृत्त के केन्द्र से होकर गुज़र रही थीं। और आपको बताना था कि इन तीनों वृत्तों द्वारा एक-दूसरे को ढांकने से बना शेडेड भाग किसी भी एक वृत्त के चौथाई हिस्से से बड़ा है या छोटा। सवाल का जवाब आप किसी गणितीय विधि से दे सकते थे, या किसी तर्क के आधार पर।

इस सवाल के कई जवाब मिले हैं। कुछ पाठकों का मानना है कि चित्र को देखकर ही यह आभास होता है कि शेडेड भाग किसी भी एक वृत्त के चौथाई हिस्से से कम महसूस होता है। कुछ पाठकों ने रेखागणित की मदद से बताया कि शेडेड भाग वृत्त के चौथाई भाग से कम है। ऐसा ही एक तरीका हम यहां सुझा रहे हैं।
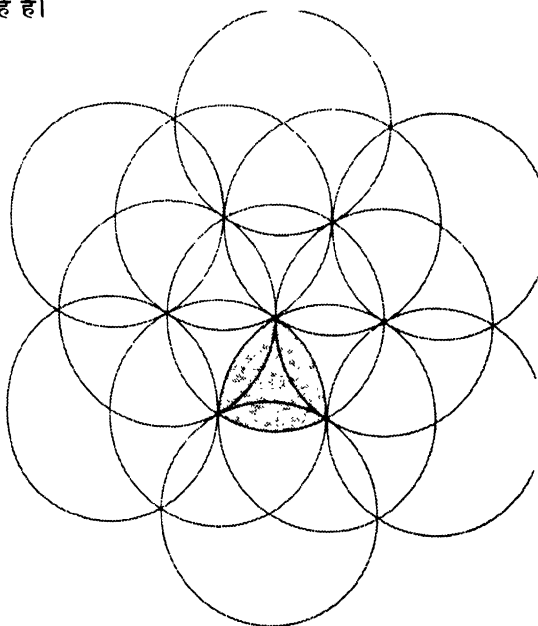
इस हल के लिए सबसे पहले शेडेड हिस्से को बनाने वाले किसी एक वृत्त में से होकर गुज़रने वाले और एक-दूसरे को काटने वाले कई और वृत्त खींचते हैं, जिससे पिछले पृष्ठ पर दिए गए चित्र जैसा पैटर्न बनकर उभरता है।
इस पैटर्न में से एक वृत्त व शेडेड भाग, यहां दिखाया गया है।
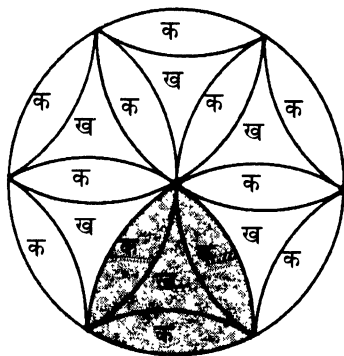
इस चित्र में आप देखेंगे कि वृत्त 6 डेल्टा आकृतियों 'ख' और 12 केलेनुमा आकृतियों 'क' से मिलकर बना है।

अब शेडेड हिस्से को देखिए। यहां तीन केलेनुमा और एक डेल्टा आकृति मौजूद है। जबकि वृत्त के चौथाई हिस्से में डेढ़ डेल्टा आकृति और तीन केलेनुमा आकृति का होना ज़रूरी होगा। इस हिसाब से भी शेडेड भाग वृत्त के एक चौथाई से कम है।

एक हल गणितीय विधि से –

यहां तो हमने जवाब का एक तरीका बताया है। हमारे पाठकों ने इस सवाल को हल करने के लिए रेखागणित की विधि का इस्तेमाल किया है। यहां एक जवाब दे रहे हैं – जिसे विनय शर्मा, जबलपुर ने भेजा है। जवाब इस तरह है:

चित्रः क

कोई तार्किक हल तो नहीं सूझा लेकिन जो सूझ पड़ा उसे भेज रहा हूं। प्रश्न में पूछे गए शेडेड भाग के तीनों केन्द्रों को मिलाने पर त्रिभुज A B C प्राप्त हुआ। जो कि एक समबाहु त्रिभुज है, माना इसकी
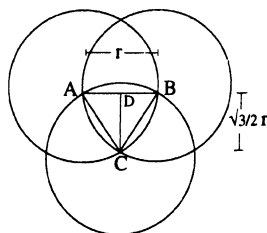
एक भुजा r है।

अत: माध्यिका

$CD = AB \sin/60^0$

$= r\sqrt{3}/2$

त्रिभुज ABC का क्षेत्रफल = 1/2 आधार गुना ऊंचाई

$= 1/2\ AB \times CD$

$= 1/2 \times \sqrt{3}/2 \times r^2$

पुन: प्रश्न में दिए गए शेडेड भाग से त्रिभुज निकालने के बाद चित्र (ख) में दिखाई आकृति AMB का क्षेत्रफल निकालने पर।

चित्र: ख

AMB का क्षेत्रफल

= AMBC – त्रिभुज (ABC) का क्षेत्रफल

चूंकि AMBC वृत्त C के क्षेत्रफल का छठा भाग है। इसलिए

क्षेत्रफल AMB = $\frac{\pi r^2}{6} - \frac{\sqrt{3}\, r^2}{4}$

$= (0.524 - 0.443)r^2$

$= 0.081r^2$

अब शेडेड भाग का क्षेत्रफल = त्रिभुज ABC का क्षेत्रफल + 3 x (AMB) का क्षेत्रफल

$= 0.443r^2 + 3 \times 0.081r^2$

$= 0.686r^2$ . . . . . (1)

चूंकि वृत्त के चौथाई हिस्से का क्षेत्रफल = $1/4\ \pi r^2$

$= 0.786r^2$ . . . . . (2)

समीकरण एक व दो से सिद्ध होता है कि दिए गए शेडेड भाग का क्षेत्रफल वृत्त के 1/4 से कम है।
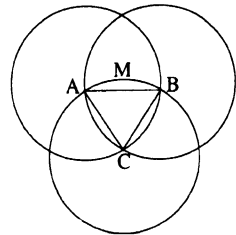
इनके जवाब भी सही थे: गणितीय विधि से इस सवाल को सही हल करने वाले हमारे पाठकों के नाम इस तरह से हैं – अलका कालरा, रमेश नगर, नई दिल्ली। पूर्वा उमरेकर, गौतम नगर, भोपाल ने भी सहज विधि से हल निकाला है।

इस बार के सवाल

सवालीराम

सवालीराम से पूछे गए सवाल इस तरह से हैं:

1. छुईमुई के पौधे को छूने पर उसकी पत्तियां क्यों सिकुड़ जाती है? दूसरे पौधे ऐसा क्यों नहीं करते?

— ओमप्रकाश, खाचरौद, उज्जैन (म. प्र.)

2. भारत में ऋतुएं क्यों बदलती हैं?

— संजय कुमार कुशवाह, होशंगाबाद (म. प्र.)

<u>सवालीराम के सवालों में से एक या दोनों सवालों के सही जवाब देने पर आपको एक पुस्तक उपहार स्वरूप दी जाएगी।</u>

ज़रा सिर खुजलाइए

1 एक व्यक्ति वर्ष 40 ईसा पूर्व के सातवें दिन पैदा हुआ और ईस्वी सन् 40 के सातवें दिन मर गया। बताइए वह व्यक्ति कितने बरस ज़िंदा रहा।

2 एक कार चालक ने अपनी कार में एक अतिरिक्त टायर रखते हुए अपना सफर शुरू किया। उसने हर टायर को बारी-बारी से एक जैसा आराम दिया। इस तरह सभी टायर बराबर की दूरी चले। उस व्यक्ति ने कुल 5000 किलोमीटर का सफर किया तो हर टायर ने चलते हुए कितनी दूरी तय की होगी।

3 पांच माचिस की तीलियों का इस्तेमाल करते हुए एक घन बनाने की कोशिश कीजिए। ध्यान रहे माचिस की तीलियों को तोड़ना नहीं है।

अगर आपके पास इन सवालों के जवाब हैं तो कृपया हमारे पास जल्द-से-जल्द भेजिए। हमारा पता आप जानते ही हैं।
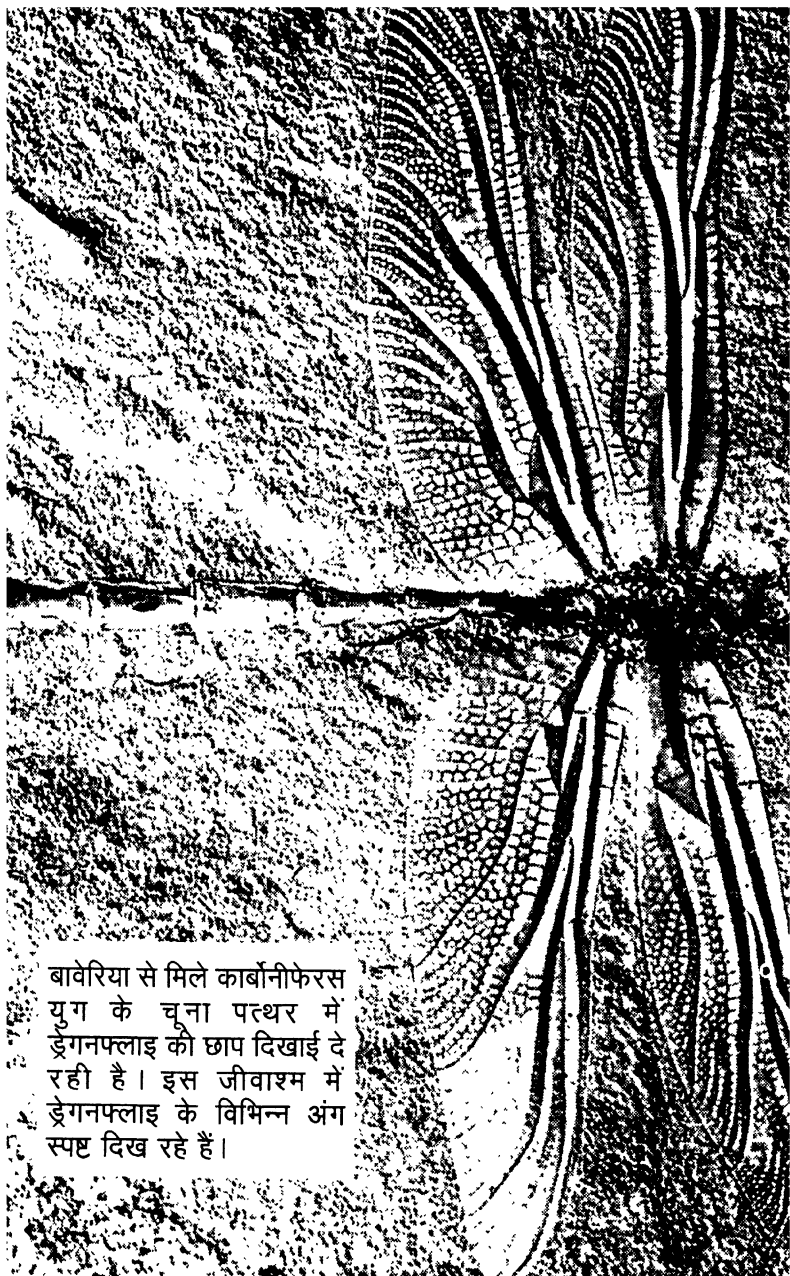
बावेरिया से मिले कार्बोनीफेरस युग के चूना पत्थर में ड्रेगनफ्लाइ की छाप दिखाई दे रही है। इस जीवाश्म में ड्रेगनफ्लाइ के विभिन्न अंग स्पष्ट दिख रहे हैं।

उड़ते ड्रेगन्स
जब दैत्य उड़ने लगे

के. ए. सुब्रह्मणियन

आपने उन्हें ज़रूर देखा होगा शायद कभी पकड़ा भी होगा। कभी उनको धागे से बांधकर या कागज़ की लंबी पट्टी उनकी दुम से बांधकर उन्हें हवा में फरफराते देखा होगा। आप भी शायद उन्हें देख हैरान हुए होंगे कि आखिर ये हैं क्या? ये रहते कहां हैं? आते कहां से हैं और कहां चले जाते हैं? बचपन में इन्हें हम हेलिकॉप्टर या चिड्डा कहते थे।

ये चिड्डे सैकड़ों प्रकार के होते हैं, अलग रंगों और छटाओं के। कुछ तो काटने वाले खतरनाक किस्म के, तो कुछ बेहद नाज़ुक और खूबसूरत। हमारे आसपास आसानी से दिखने वाले ये कीट कभी-कभी तो रात में हमारे घर में घुस आते हैं और बल्ब और ट्यूब के इर्द-गिर्द खूब चक्कर लगाते हैं, और कभी-कभी ज़मीन की ओर गोता भी लगाते दिखते हैं।

कीट-जगत में इनसेक्टा वर्ग के ओडोनेट उप-समूह में ड्रेगनफ्लाइ और डेमसलफ्लाइ के अलावा अन्य बहुत सारे सामान्य कीट शामिल हैं जिन्हें हम आसपास के नदी-तालाबों पर उड़ते हुए देख सकते हैं।

इन कीटों की आज लगभग पांच हज़ार जीवित प्रजातियां मौजूद हैं, जिनमें से करीब पांच सौ प्रजातियां भारत में पाई जाती हैं। ओडोनेट के पुरखे सबसे पहले कार्बोनीफेरस काल* में लगभग 28.5 करोड़ साल पहले देखे गए थे।

कार्बोनीफेरस युग के ऐसे जीव विशालकाय हुआ करते थे (देखिए चित्र)। इनमें से कुछ की दोनों पंखों के बीच की लंबाई 71 सेमी तक होती थी। 'ओडोनेट' और 'इफिरोमेप्टोरा' पहले कीट समूह थे जिनके पंख विकसित हुए और वे पहली बार हवा

*कार्बोनीफेरस काल यानी हमारी धरती पर आज से 34 करोड़ साल से 28 करोड़ साल पहले का समय। वह काल वनस्पतियों और जीवों की विविधताओं से परिपूर्ण था। धरती पर पाए जाने वाले कोयला भंडारों में से अधिकांश उस दौर की वनस्पतियों से निर्मित हुए हैं।

में उड़े। ड्रेगनफ्लाइ ने उड़ने की कला में महारत पाई और आज भी इस कला में अन्य कीटों के मुकाबले वह कहीं आगे है।

शरीर रचना के आधार पर ओडोनेट समूह के कीटों को तीन वर्गों में बांटा गया है – डेम्सल फ्लाइ, एनीसोज़ायगोप्टेरा और ड्रेगनफ्लाइ। बीच वाले उपवर्ग में सिर्फ दो ही प्रकार की प्रजातियां मिलती हैं, जिनमें से एक दार्जिलिंग में पाई जाती है।

ड्रगनफ्लाइ और डेम्सल फ्लाइ को आसानी से अलग-अलग पहचाना जा सकता है (देखिए चित्र)। दोनों की शारीरिक रचना में अन्तर है, लेकिन उनके जीवन चक्र में काफी समानताएं हैं। इस लेख में दोनों के तुलनात्मक अध्ययन की कोशिश की गई है।

ओडोनेट्स अपनी वयस्क अवस्था से पहले के चरण में प्रमुखतः जलचर होते हैं इसलिए बहते या रुके हुए पानी से उनके जीवन का प्रगाढ़ संबंध होता है। कुछ प्रजातियां बहुत ही सीमित तरह के आवास में रहती हैं, जबकि कुछ ने शहरीकरण की वजह से उत्पन्न हुए नए मानव निर्मित आवास स्थलों यानी कि जलाशयों आदि को भी अपना लिया है। अपने आवास संबंधी रवैये से ही ओडोनेट्स का भौगोलिक दायरा तय होता है। मसलन वे प्रजातियां जो सिर्फ पहाड़ी झरनों को अपना आवास बनाती हैं, वे सिर्फ एक सीमित क्षेत्र -विशेष में ही पाई जाती हैं। लेकिन वे प्रजातियां जो पानी के पोखरों को अंडे देने के लिए चुनती हैं, उन्हें फैलाव के ज़्यादा मौके मिलते हैं।
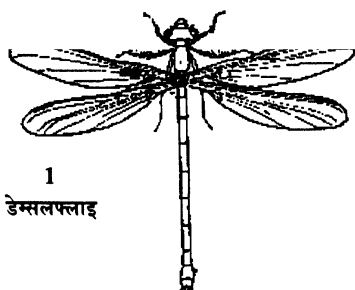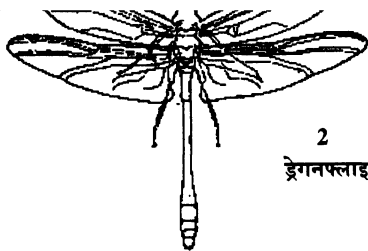
डेम्सलफ्लाइ के दोनों पंख लगभग एक जैसे होते हैं। ड्रेगनफ्लाइ के पंख न सिर्फ ज़्यादा बड़े होते हैं, बल्कि पीछे वाले पंख का आधार ज़्यादा चौड़ा होता है।
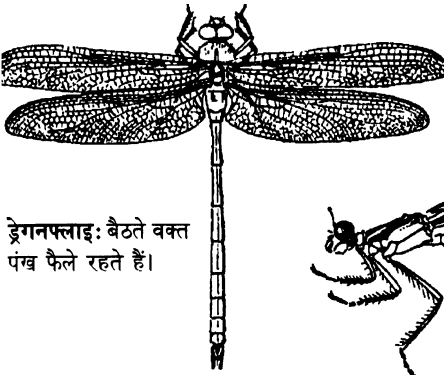
ड्रेगनफ्लाइ: बैठते वक्त पंख फैले रहते हैं।
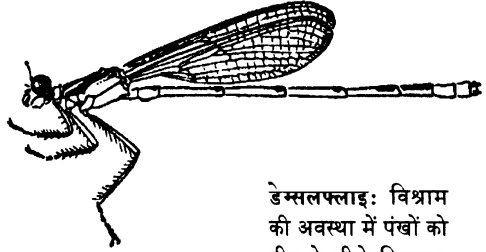
डेम्सलफ्लाइ: विश्राम की अवस्था में पंखों को पीठ के पीछे मिलाकर रखते हैं।

अंडे

ओडोनेट अपने अंडे पानी के अलग-अलग स्रोतों में देते हैं – नम ज़मीन से लेकर धुआंधार झरनों में। यह प्रजाति विशेष पर निर्भर करता है कि वे कौन-सा स्थान चुनेंगी। मादाएं अंडे देने के लिए स्थान का चुनाव करते समय स्थान की भौगोलिक विशेषताओं पर ध्यान देती हैं जैसे कि तट की लंबाई। वे प्रजातियां जो अंडे देने के लिए नदी जैसे स्थलों को चुनती हैं, वे लंबे किनारों को प्राथमिकता देती हैं। यह भी देखा गया है कि तालाबों के या झीलों के लंबे किनारों पर कई बार नदीय प्रजातियां अंडे देती पाई जाती हैं। कई बार पतंगा मादाएं चमकती, सपाट सतह को पानी की सतह समझ बैठती हैं, और इस गलतफहमी की वजह से कार के बोनट, गीली सडकों जैसी अप्राकृतिक सतह पर भी अंडे देने की कोशिश करती हैं।

डेम्सलफ्लाइ अपने लम्बे और बेलनाकार अंडे किसी पौधे के अन्दर डालती है। डेम्सल के ओविपोज़िटर (ovipositor) आरी की दांतों के समान नुकीले होते हैं, जिससे पौधों के तंतुओं को काटने में मदद मिलती है। इससे अंडों को पौधों के भीतर सुरक्षित रखा जा सकता है।

अंडे देने के लिए डेम्सलफ्लाइ की कई प्रजातियां कुछ खास पौधों का ही चयन करती हैं, जबकि कुछ प्रजातियां किसी भी पौधे पर अंडे दे देती हैं। विशेष मेज़बान पौधे के चयन की वजह से कई प्रजातियों का वितरण काफी हद तक प्रभावित होता है। कुछ बर्र

(हायमनोप्टेरा) डेम्सलफ्लाइ के अंडों पर परजीवी होते हैं। परजीवी मादाएं पानी की सतह के नीचे तैरती हुई पानी में डूबे हुए पौधों में डेम्सलफ्लाइ के अंडों को खोजती हैं।

ड्रेगनफ्लाइ अपने चौड़े और दीर्घ-वृत्ताकार अंडे या तो हवा में या पानी के ऊपर लटक रहे पौधों या चट्टानों पर बैठकर देती है। मादा ड्रेगनफ्लाइ एक के बाद एक कई गुच्छों में अंडे देती है। एक गुच्छे में अंडों की संख्या सैकड़ों से हज़ारों तक हो सकती है। वहीं मादा डेम्सलफ्लाइ एक बार में 100 से 400 अंडे देती है। गरम जलवायु वाले प्रदेशों में अंडे 5-40 दिनों में फूटते हैं, जबकि समशीतोष्ण प्रजातियों में करीब 80-230 दिनों में अंडे फूटते हैं।

नदियों के आसपास रहने वाले कई ड्रेगनफ्लाइ के अंडों के साथ जिलेटिन जैसा पदार्थ होता है, जो पानी के संपर्क में आने पर फैलकर गोंद जैसा चिपचिपा बन जाता है। इसकी वजह से अंडे पानी के साथ बह नहीं जाते और अपने शुरुआती आवास के आसपास ही रहते हैं।
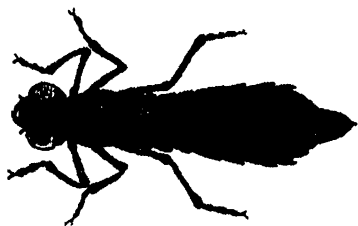
ड्रेगनफ्लाइ का लार्वा

लार्वा अवस्था

पानी में ओडोनेट के लार्वा चपल शिकारी साबित होते हैं। परिवेश से मिलते-जुलते रंग जहां उन्हें छुपने में मदद देते हैं, वहीं उनकी तेज़ नज़र उन्हें खतरनाक शिकारी बनाती है। इनके लार्वा आमतौर पर घात लगाकर हमला करते हैं और अपने शिकार की छुपकर राह देखते हैं ताकि पास आने पर उसे दबोचा जा सके। लेकिन कुछ प्रजातियां ऐसी भी हैं जिनके लार्वा अपने शिकार का शेर की तरह पीछा करते रहते हैं; जैसे ही शिकार पहुंच के दायरे में आता है, वे अपने नुकीले

डेम्सलफ्लाइ का लार्वा

जबड़े बाहर निकालकर अपने शिकार को घायल कर देते हैं। ये लार्वा बहुत ही पेटू होते हैं और चलते-फिरते और ठीक-ठाक साइज़ के किसी जीव को अपना भोजन बनाने की कोशिश करते हैं, चाहे वे अपनी ही प्रजाति के दूसरे लार्वा हों। कुछ बड़ी प्रजातियों के अंतिम चरण के लार्वा तो छोटी मछलियों, टेडपोल और अपनी ही प्रजाति के नवजात कीटों को खाने का भी कमाल दिखा चुके हैं।

ड्रेगनफ्लाइ के लार्वा के मलाशय की भीतरी दीवार खूब सारी बारीक झिल्लियों (Foliations) में बंटी होती है। ये झिल्लियां या 'रेक्टल गिल' इन कीटों के श्वसन अंग हैं। ड्रेगनफ्लाइ का पेट लगातार फूलने सिकुड़ने की क्रिया करके एक प्रकार से पम्प का काम करता है जिससे मलाशय के अन्दर लगातार नया पानी आता रहता है। डेम्सलफ्लाइ में पेट के अंतिम छोर पर बारीक पत्रक (लेमेला) पाए जाते हैं जो सहायक श्वसन अंग की तरह काम करते हैं। डेम्सलफ्लाइ में मलाशय, शरीर की पूरी सतह और पंखों की सतह पर गैसों के आदान-प्रदान का काम तो चलता ही रहता है।

लार्वा की खोल से बाहर निकलते हुए ड्रेगनफ्लाइ

आमतौर पर लार्वा दो महीनों में पूरा विकसित होता है। विभिन्न प्रजातियों में, या किसी एक प्रजाति में भी लार्वा कितने चरणों (इनस्टार) में से गुज़रेगा, इसकी संख्या बहुत ही अलग-अलग होती है। आमतौर पर यह संख्या 9 से 15 के बीच होती है। जब लार्वा काया उतारने (moulting) के लिए तैयार हो जाता है, वह खाना-पीना बन्द कर देता है और रेंगता हुआ किसी नए पौधे या किसी चट्टान पर पहुंच जाता है। सामान्यतः लार्वा ऐसा सूर्यास्त के बाद करता है, और सूरज उगने से पहले एक वयस्क के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह नया वयस्क गीला और कोमल होता है परन्तु जैसे-जैसे दिन चढ़ता है और गर्मी बढ़ती है, वयस्क का गीलापन

कम होता जाता है और वे सशक्त हो जाते हैं। अब वे अपनी पहली उड़ान के लिए तैयार हैं।

वयस्क डेमसल और ड्रेगन फ्लाइ

नए-नए नर और मादा उस जगह को छोड़ देते हैं जहां वे लार्वा की स्थिति से निकलकर वयस्क के रूप में विकसित हुए थे। लेकिन वे अभी भी आसपास के इलाके में निवास करते हैं जब तक उनमें प्रजनन क्षमता विकसित न हो जाए। नर, मादा की अपेक्षा ज़्यादा दूर तक चले जाते हैं। कुछ प्रजातियों में परिपक्व होने की यह विश्राम अवधि 8-9 महीनों तक भी हो सकती है। लेकिन अधिकांश डेम्सलफ्लाइ तीन हफ्ते या उससे कम समय में परिपक्व हो जाती हैं। वहीं ड्रेगनफ्लाइ को लगभग दो हफ्ते का समय लगता है। परिपक्वता प्राप्त करने के इस दौर में उनके शरीर और पंखों के रंग में क्रमबद्ध तरीके से बदलाव आता है।

उड़ान

उड़ने के कौशल में ओडोनेट की क्षमता अन्य कीटों की अपेक्षा कहीं बेहतर होती है। ओडोनेट के पंख – पतंगों, तितलियों और मधुमक्खियों की तरह जुड़े हुए नहीं होते। उनके आगे के दोनों पंख, पीछे के पंखों से स्वतंत्र रूप से फड़फड़ाते हैं।

इनकी वक्षस्थलीय मांसपेशियां बहुत मज़बूत होती हैं जो उन्हें लम्बी उड़ान में मदद करती हैं, साथ ही कलाबाज़ी या पैंतरे बदलने में भी मदद करती हैं। इन मज़बूत मांसपेशियों की मदद से ओडोनेट हवा में रुककर एक ही जगह उड़ते रह सकते हैं, और उड़ते हुए अपने आप को 180 डिग्री के कोण से घुमा भी सकते हैं।

ड्रेगनफ्लाइ, डेम्सलफ्लाइ के मुकाबले बेहतर उड़ाकू होते हैं और 25-30 किमी प्रति घंटे की रफ्तार से भी उड़ सकते हैं। इनके उड़ने की क्षमता में इस अंतर की वजह से उनका प्रसार और भौगोलिक वितरण तय होता है। ऐसा अक्सर देखा गया है कि उड़ने वाले बड़े और ताकतवर जीवों का भौगोलिक दायरा, छोटे और उड़ने में कमज़ोर जीवों के मुकाबले कहीं ज़्यादा फैला हुआ होता है।

कई अन्य जीवों की तरह ड्रेगनफ्लाइ भी प्रवास (माइग्रेशन) करती हैं। हमारे यहां इनकी सबसे आम प्रजाति पेंटेला फ्लावेसेन्स को मॉनसून के तुरंत बाद सड़कों और रेलवे लाइनों जैसे खुले स्थानों पर से बड़े झुंडों में गुज़रते हुए देखा जा सकता है। हालांकि यह अभी स्पष्ट नहीं हो पाया है कि ये कहां और किस तरह प्रवास करती हैं।

इनकी कई प्रवासी प्रजातियां पक्षियों पर रहने वाले कुछ परजीवियों

को अस्थाई आवास प्रदान करती हैं। सामूहिक प्रवास के दौरान बहुत से जलीय पक्षी इनका शिकार करते हैं – इस चक्कर में भोजन के साथ-साथ वे परजीवी को भी ग्रहण कर लेते हैं।

ड्रेगनफ्लाइ का भोजन

वयस्क ड्रेगनफ्लाइ हवा में शिकार करती हैं और छोटे-छोटे कीड़ों जैसे मच्छर, छोटी तितलियों, पंख वाले कीड़ों और मक्खियों को अपना भोजन बनाती हैं। ज़्यादातर वे दिन की रोशनी में शिकार करती हैं लेकिन कुछ प्रजातियां सुबह या शाम के धुंधलके में शिकार करती हैं। ड्रेगनफ्लाइ किसी मौके की जगह पर बैठकर शिकार के लिए वहां से बार-बार उड़ान भरती रहती है, या फिर लगातार उड़ती रहती है। इस मायने में उनके शिकार का तरीका कीट-भक्षी चिड़ियों व अबाबील के शिकार के तरीके से मिलता-जुलता है। कई बार वयस्क ड्रेगनफ्लाइ के झुंड पेड़ की चोटी पर भिन-भिनाते कीड़ों को अपना शिकार बनाते हैं। ऐसा अक्सर भोर व गोधूलि के समय देखा जा सकता है।

वयस्क ड्रेगनफ्लाइ और डेम्सल-फ्लाइ हवा में शिकार को पकड़ने व उसे मुंह तक ले जाने के लिए अपनी टांगों का इस्तेमाल करते हैं। इस काम के लिए उनकी टांगें अत्यन्त कारगर होती हैं। खासकर उनकी लम्बाई, उनकी स्थिति, उनका रीढ़ की हड्डी से जुड़ाव आदि उन्हें शिकार में मददगार बनाते हैं।

ड्रेगनफ्लाइ की नज़र बहुत विकसित होती है और उनके सिर का अधिकांश भाग आंखों से ही ढका होता है। इन आंखों से वे अपने शिकार को लगभग 40 फीट की दूरी से देख सकती हैं।

प्रजनन

लैंगिक रूप से परिपक्व ड्रेगनफ्लाइ अपने-अपने चारागाहों और बसेरों से अंडे देने के स्थलों की ओर लौटते हैं। प्रायः नर, मादाओं से पहले परिपक्व होते हैं और अंडे देने की जगह पर पहले पहुंच जाते हैं। हर परिपक्व नर का अपना क्षेत्र होता है जिसमें वह किसी अन्य नर को नहीं आने देता। प्रत्येक नर, अपनी ही प्रजाति के अन्य नरों से अपने क्षेत्र की बड़ी आक्रामकता के साथ रक्षा करता है। ऐसा वे या तो पंखों को हिलाकर या अपने शरीर का पेटवाला भाग दिखाकर भी करते हैं। ज़्यादा आक्रामक दांवपेंच अक्सर उड़ते हुए होते हैं जो धमकाने से शुरू होकर शारीरिक लड़ाई का रूप ले सकते हैं।

ओडोनेट में लैंगिक द्विरूपता पाई जाती है यानी कि वयस्क नर और मादा एकदम अलग दिखते हैं। आमतौर पर नवजात नर और मादा समान रंग के होते हैं। जैसे-जैसे नर ड्रेगनफ्लाइ प्रजनन के लिए परिपक्व होने लगते

हैं, उनका रंग अधिक चमकीला हो जाता है। ड्रेगनफ्लाइ के शरीर और पंखों का रंग और उस पर बनी आकृतियां प्रत्येक नर के क्षेत्राधिकार और मादा के साथ उसके प्रणय-निवेदन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। डेम्सल में प्रणय-निवेदन की प्रवृत्ति ड्रेगनफ्लाइ की अपेक्षा ज़्यादा दिखाई पड़ती है। नर डेम्सलफ्लाइ मादा को रिझाने के कई तरीके अपनाता है – जैसे वह या तो मादा के आगे समर्पण की मुद्रा अपना लेता है, या वह उस स्थान पर उड़कर चला जाता है जहां मादा डेम्सल अंडे देती है और थोड़ी दूरी तक पानी के बहाव के साथ खुद को बहने देता है। लैंगिक रूप से सक्षम मादाओं को लेकर नर ओडोनेट में काफी कड़ी स्पर्धा होती है।

शुक्राणु का सफर: नर डेम्सलफ्लाइ शरीर के अंतिम खंड में मौजूद अपने जनन छिद्र से शुक्राणुओं को निका सहायक जनन अंग (शुक्राणु थैली) में रखते हुए।

प्रजनन के लिए परिपक्व मादा संभावित नर के प्रति विशेष मुद्रा में रहती है और जल्दी ही वे एक जोड़ी बना लेते हैं। नर के पेट के सबसे आखिरी खंड में क्लास्पर यानी आलिंगक होता है। नर क्लास्पर का इस्तेमाल मादा को पकड़कर रखने के लिए करता है। नर, क्लास्पर की मदद से मादा की गर्दन (थोरेक्स) पर पकड़ बनाता है। मादा के गर्दन की रचना ऐसी होती है कि क्लास्पर उसमें सटीक तरीके से फिट हो जाए। दरअसल मादा के गर्दन की यह रचना जिसमें नर आलिंगक चाबी की तरह फिट हो जाए, ही वह तरीका है जो नज़दीकी प्रजातियों के बीच मैथुन क्रिया को रोकता है।

समागम के दौरान या ठीक पहले नर अपने शुक्राणुओं को शरीर के अंतिम खंड से निकालकर अपने पेट के द्वितीय खंड में रखता है, जहां उसका सहायक जनन अंग मौजूद है। इस सहायक जनन अंग में हारपून या बरछी की तरह की

रचना होती है। यह रचना मैथुन के दौरान मादा जनन अंगों से, पहले से किसी नर द्वारा डाले गए शुक्राणुओं को निकाल बाहर करती है और उसके बाद अपने शुक्राणुओं को मादा जनन अंगों में छोड़ती है। ओडोनेट नर तथा मादा दोनों में बहुमैथुन (multiple mating) काफी सामान्य है।

अंडे देना

संयुग्मन के तुरन्त बाद मादा अण्डे देना शुरू करती है। नर या तो मादा को पकड़े रखकर अण्डे देने वाली जगह तक जाता है, या उसके साथ उड़कर वहां तक पहुंचता है। यह अक्सर देखा गया है कि अपना विशेष क्षेत्राधिकार रखने वाले नर, मादा के साथ-साथ उड़ते हैं जबकि अन्य नर मादा के अण्डे देने तक उसको पकड़कर रखते हैं। इस दौरान मादा पर अन्य नर हमला कर सकते हैं। ऐसे समय वे नर जिन्होंने अभी मैथुन नहीं किया होता, इस जोड़ी पर हमला कर मादा को अगवा करने की कोशिश कर सकते हैं।

कुछ डेम्सल मादाएं पानी में डूबे पौधों पर अण्डे देती हैं। ऐसे समय नर हवा में एक जगह पर ही उड़ते हुए मादा को थामकर रखता है यानी कि
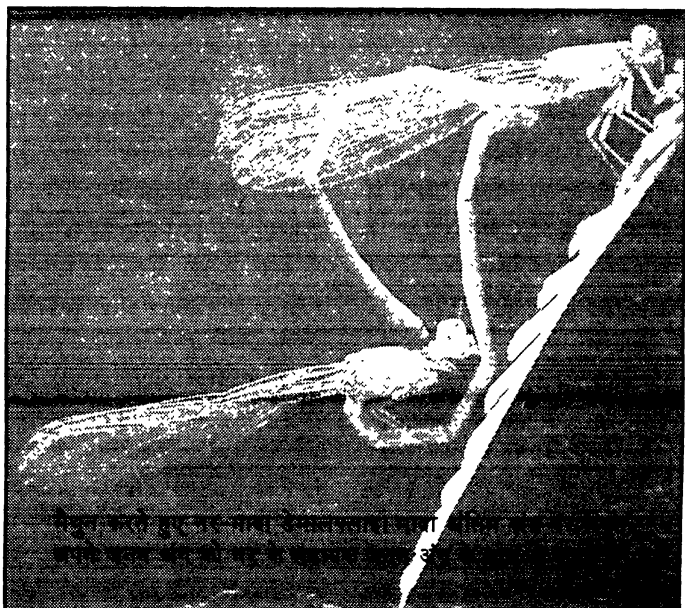
एक तरह का लंगर प्रदान करता है और मादा अंडे देती है।

आयुकाल

आमतौर पर जब भी प्राकृतिक आयुकाल की बात होती है, तो सिर्फ प्रजनन अवधि पर ही ध्यान दिया जाता है। अधिकांश डेम्सलफ्लाइ में यह अवधि लगभग 8 हफ्ते तक होती है, और ड्रेगनफ्लाइ में तकरीबन 6 हफ्ते तक। यदि इसमें हम परिपक्व होने की अवधि भी जोड़ दें तो यह आयुकाल डेम्सलफ्लाइ के लिए लगभग 7-9 हफ्ते और ड्रेगनफ्लाइ के लिए 8-10 हफ्ते तक पहुंच जाएगा।

ड्रेगनफ्लाइ का अपने संपूर्ण जीवन में कई तरह के शिकारियों से सामना होता है। लार्वा अवस्था में सबसे बड़ा खतरा मछलियों से होता है। पक्षियों में हॉबी, बी-ईटर, किंगफिशर, टर्न आदि ओडोनेट्स को भोजन बनाने से नहीं चूकते। विशाल ड्रेगनफ्लाइ, रोबर-फ्लाइ और मकड़ी आदि ओडोनेट्स के महत्वपूर्ण अकशेरुकी शिकारी हैं।

पर्यावरणीय महत्व

ओडोनेट जलीय कीटों का एक महत्वपूर्ण समूह है। इनके लार्वा और वयस्क दोनों ही शिकार करते हैं, इसलिए पानी वाले इलाके की भोजन-शृंखला में ये महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वयस्क ओडोनेट मच्छरों, काली मक्खियों और दूसरी खून चूसने वाली मक्खियों को अपना शिकार बनाते हैं, और मनुष्य के लिए नुकसानदेह इन कीटों पर जैविक नियंत्रण बनाए रखते हैं। थाइलैंड के शहरी इलाकों में एक विशेष ड्रेगनफ्लाइ के लार्वा का 'इडस' नाम के मच्छरों पर काबू पाने के लिए सफलतापूर्वक उपयोग हुआ है। ये मच्छर डेंगू बुखार फैलाते हैं। कृषि बहुल क्षेत्रों में ओडोनेट की कई प्रजातियां कृषि के लिए हानिकारक कीटों का सफाया करती हैं।

मनुष्य के पर्यावरण सहायक होने के अलावा ओडोनेट्स की किसी भी क्षेत्र की जैव-वासिकता की गुणवत्ता को पहचानने की भूमिका को महत्व दिया जाने लगा है। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका में यह पाया गया कि जहां-जहां प्रकृति में मनुष्यों के दखल का स्तर बढ़ा है, वहां ड्रेगनफ्लाइ की विभिन्न प्रजातियों का वितरण व आबादी भी प्रभावित होती है।

ऐसे जलीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली ड्रेगनफ्लाइ जहां मनुष्य ने अभी उथल-पुथल नहीं मचाई है, चयनित विशेष आवासों में ही रहती हैं और उनका वितरण भी ऐसी जगहों तक सीमित होता है। जबकि औद्योगिक या शहरी इलाकों में पाई जाने वाली प्रजातियों की ऐसी कोई विशेष पसंद नहीं होती और वे कहीं भी पाई जाती हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चला है

कि ड्रेगनफ्लाइ न केवल जलीय संसाधनों की गुणवत्ता के प्रति संवेदनशील होती हैं बल्कि आसपास के परिदृश्य, खासतौर पर पानी के स्रोतों में बदलावों के प्रति भी।

भारत के पश्चिमी घाट में रहने वाली ड्रेगनफ्लाइ पर हाल के दौर में जो अध्ययन हुए हैं उनसे पता चलता है कि ड्रेगनफ्लाइ यहां के इकोसिस्टम के स्वास्थ्य का संकेतक हो सकते हैं। पश्चिमी घाट की लगभग 38 प्रतिशत ओडोनेट स्थानीय (Endemic) हैं और इनकी निवास संबंधी विशेष प्राथमिकताएं होती हैं। भारत में वयस्क ओडोनेट के वर्गीकरण के बारे में तो काफी जानकारी है लेकिन इनके पारिस्थितिक पहलुओं पर कम ही अध्ययन हुआ है।

यदि ओडोनेट्स को एक संकेतक मानकर हम जैवमंडल का निरीक्षण करना चाहते हैं तो दो बातों पर हमें गंभीरता से काम करना होगा – पहली, ओडोनेट्स के सम्पूर्ण जीवन चक्र की हमारी समझ को विकसित करना। देश में पाई जाने वाली लगभग 500 प्रजातियों में से केवल 76 की लार्वा अवस्था की जानकारी हमारे पास उपलब्ध है, जबकि केवल 15 प्रजातियों के सम्पूर्ण जीवन-चक्र का अध्ययन हुआ है। जलीय स्रोतों के स्वास्थ्य के मद्देनज़र लार्वा अवस्था के बारे में विस्तृत जानकारी का होना काफी महत्वपूर्ण हो सकता है। इस जानकारी के अभाव में बायो-मॉनीटरिंग पर काम कर पाना कठिन है।

दूसरा महत्वपूर्ण मुद्दा है पिछले 50 सालों में पश्चिमी घाट के भौगोलिक परिदृश्यों में हो रही तब्दीलियों से ड्रेगनफ्लाइ का वितरण और जीवन बहुत प्रभावित हुआ है। इस समस्या से निपटने के लिए नए फील्ड सर्वेक्षण करवाए जाने चाहिए ताकि विभिन्न प्रजातियों के वितरण और उन पर मंडराते खतरों का जायज़ा लिया जा सके। संभवतः इस संबंध में भविष्य में होने वाले अध्ययन ड्रेगनफ्लाइ की सम्पूर्ण पारिस्थितिक समझ बनाने और बायो-मॉनीटरिंग के साधन के रूप में उसके महत्व को रेखांकित करने वाले होंगे।

के. ए. सुब्रह्मणियन: बंगलोर के इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज़ के इकॉलॉजीकल साइंसेज़ विभाग में कार्यरत। वर्तमान में वे पश्चिमी घाट इलाके की जल धाराओं से संबद्ध कीटों पर शोधकार्य कर रहे हैं। साथ ही इन कीटों की विविधता और संरक्षण में भी उनकी रुचि है।

यह लेख रेज़ोनेन्स पत्रिका के अक्टूबर, 2002 अंक से लिया गया है।

अनुवादः कल्याणी डिके।

इन कीटों के समागम के तरीके के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए देखें संदर्भ का अंक 28, जुलाई-अगस्त 1999, पृष्ठ 94-96.

स्मरण

डॉ. कलबाग और विज्ञान आश्रम

विज्ञान आश्रम, पाबल, पुणे के श्रीनाथ कलबाग आज हमारे बीच नहीं हैं। लेकिन शिक्षा के क्षेत्र में किए गए अपने कामों की बदौलत वे हमेशा हमारे बीच रहेंगे।

कलबाग ने अपने जीवन के करीब 20 वर्ष ग्रामीण युवाओं को शिक्षा देने में बिताए। मगर शिक्षा का उनका नज़रिया परंपरागत तरीके से काफी फर्क था। उनका मानना था कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो एक गांव के बच्चे को अपना जीवन सुधारने में मदद करे, न कि उसे शहर की ओर पलायन को मजबूर करे। शिक्षण के उनके तरीके में न तो किसी कक्षा की ज़रुरत होती है, न ही किसी श्याम पट्ट की और न ही किसी पुस्तक की। उनका मानना था कि बच्चे अपनी रोज़ाना की ज़िंदगी में विभिन्न तरह के कामों को करते हुए जो कुछ सीखते हैं वही सबसे अच्छी शिक्षा है।

कलबाग मानते थे कि उन्होंने स्वयं भी जो कुछ सीखा है वह भी इसी प्रकार सीखा है। वे कहते थे कि उन्हें ऐसा कुछ भी याद नहीं जो उन्होंने स्कूल में सीखा हो और वह आज भी उनके काम आ रहा हो।

डॉ. कलबाग की विज्ञान और विशेष कर इंजीनियरिंग में विशेष रुचि थी। बचपन में उन्होंने घर में अपने लिए एक छोटी-सी प्रयोगशाला भी बना रखी थी जिसमें वे तरह-तरह के प्रयोग किया करते थे।

उन्होंने एम.टेक. तक की पढ़ाई भारत में करने के बाद अमेरिका के एक विश्वविद्यालय से फुड टेक्नॉलॉजी में पी.एच.डी. की। तत्पश्चात उन्होंने भारत वापस आकर हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड कम्पनी में 27 वर्षों तक काम किया। मगर इस दौरान उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में काम करने की अपनी योजना को और पुख्ता बनाया।

अपनी इस नौकरी के आखिर के दिनों में उन्होंने होमी भाभा सेंटर फॉर सांइस एज्यूकेशन, मुंबई के लिए मुंबई में फुटपाथ के बच्चों के बीच एक सर्वे किया। सर्वे के दौरान उन्होंने पाया कि वे बच्चे कई तरह की समस्याओं के हल बड़ी आसानी से ढूंढ ले रहे थे। मगर जब उन्हीं बच्चों से उनके पाठ्यक्रम की चीज़ों के बारे में बात की गई तो वे उसमें काफी पिछड़े हुए दिखे। इससे कलबाग इस

निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्कूली पाठ्यक्रम उन बच्चों की क्षमताओं और योग्यताओं के अनुरूप नहीं है, लेकिन अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी से वे बच्चे जो कुछ भी सीख रहे थे वह किसी भी मायने में स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा से कम नहीं था। लेकिन उनके विचारों के आधार पर महानगरपालिका की शालाओं का पाठ्यक्रम बदला जाता इसकी संभावना नहीं थी।

ऐसे ही कुछ और अनुभवों के आधार पर कलबाग धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था बच्चों को कुछ भी नहीं सिखाती। उदाहरण के लिए उन्होंने यह सवाल उठाया कि कोई भी बच्चा अपने पैदा होने के दो वर्ष के अन्दर कम-से-कम एक भाषा तो सीख ही लेता है। लेकिन अगले दस वर्षों में वह कोई और भाषा क्यों नहीं सीख पाता?

उन्होंने इस बात की तरफ भी लोगों का ध्यान खींचा कि प्राथमिक शालाओं में नामांकन कराए बच्चों में से 90 प्रतिशत हाई स्कूल स्तर तक भी नहीं पहुंच पाते – और दलील यह दी जाती है कि ये बच्चे 'कमअक्ल' होते हैं इसलिए पढ़ नहीं पाते। उन्होंने पूछा, क्या हमने कभी यह सोचने की कोशिश की है कि यही बच्चे आगे चलकर हमारे मकान बनाते हैं, हमारी गाड़ियों की मरम्मत करते हैं, बहुत सारे छोटे मोटे उद्योग-धंधे चलाते हैं या खेती करते हैं। अगर ये बच्चे 'कमअक्ल' होते तो इतने प्रकार के काम किस प्रकार कर पाते?

शिक्षा के अपने इन्हीं सब विचारों को अमली जामा पहनाने के लिए उन्होंने सन् 1983 में इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ एज्यूकेशन, पुणे के सहयोग से पुणे के पास के एक गांव पाबल में विज्ञान आश्रम की स्थापना की। इस आश्रम में मुख्य रूप से आस-पास के गांवों के बच्चों को विभिन्न प्रकार के कौशलों का प्रशिक्षण दिया जाना शुरू किया गया। इसके अतिरिक्त इन बच्चों में समस्याओं के निवारण की प्रवृति के विकास पर भी विशेष ध्यान दिया गया। लेकिन यहां सीखने सिखाने का सारा काम किसी विशेष प्रयास के तहत नहीं बल्कि सामान्य काम-काज के दौरान ही होता है।

विज्ञान आश्रम ने अपनी स्थापना के बाद अपना सर्वप्रथम उद्देश्य शिक्षण की इस खास विधि को सामान्य शिक्षा प्रणाली में लागू होने लायक बनाना तय किया। कलबाग और उनके साथी अपने इस उद्देश्य में सफल भी रहे। उन्होंने ऐसी एक प्रणाली का विकास किया जिसका नाम रुरल डेवलपमेंट थ्रू एज्यूकेशन सिस्टम (RDES) अर्थात शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ग्रामीण विकास, रखा।

यह प्रणाली मुख्य रूप से विकास के विभिन्न कामों को अपनाकर एक

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करने की बात करती है जिसके अंदर बच्चे वास्तविक परिस्थितियों में कई तरह के कौशलों को सीख पाते हैं। इसके अन्तर्गत समाज के लोगों को कीमत चुकाने पर कई तरह की सेवाएं प्रदान की जाती हैं, और इस प्रकार सेवा प्रदान करने के दौरान छात्रों का विभिन्न प्रकार के कौशलों में प्रशिक्षण हो जाता है।

इस कार्यक्रम की दो विधियां विकसित की गईं हैं। पहली विधि परंपरागत शिक्षा व्यवस्था में पाठ्य-क्रम के एक भाग के रूप में 8वीं से 10वीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए विकसित की गई है। इस पाठ्यक्रम को महाराष्ट्र राज्य शिक्षा बोर्ड की मान्यता प्राप्त है और अभी तक महाराष्ट्र में करीब 20 स्कूल इस पाठ्यक्रम को चलाते हैं।

दूसरी विधि गैर पारंपरिक है जिसमें 8वीं कक्षा के बाद स्कूल छोड़ चुके बच्चों को एक साल तक इसका प्रशिक्षण दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम विज्ञान आश्रम में ही चलाया जाता है और यह पूरी तरह से आवासीय है। इसके अन्तर्गत छात्र घर, स्वास्थ, खेती, पशुपालन, प्रौद्यौगिकी, ऊर्जा तथा पर्यावरण के बारे में जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के माहौल में जानकारी प्राप्त करते हैं। साथ ही वे इन मुद्दों के सैद्धान्तिक पहलुओं की भी जानकारी आश्रम स्थित पुस्तकालय या इंटरनेट से प्राप्त करते हैं। इस पाठ्यक्रम के दौरान छात्र विभिन्न कामों को करते हुए कुछ पैसे भी कमा लेते हैं। इस पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद छात्रों को नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ ओपेन स्कूलिंग, दिल्ली की तरफ से एक डिप्लोमा भी दिया जाता है।

कुल मिला कर विज्ञान आश्रम एक ऐसे स्कूल की झांकी प्रस्तुत करता है जो कि न केवल अपने उद्योग-धंधों और सेवा प्रदान करने वाले कामों की बदौलत आर्थिक रूप से स्वतंत्र है, बल्कि जहां छात्र विभिन्न चीज़ों के बारे में सीखे सैद्धान्तिक मुद्दों को वास्तविक परिस्थितियों में लागू कर उसका स्वयं अनुभव भी प्राप्त करते हैं। विज्ञान आश्रम अपने सभी छात्रों से यह अपेक्षा करता है कि आश्रम से निकलने के बाद वे अपने गांवों में छोटे-मोटे उद्योग-धंधे शुरू करें जिससे वे दूसरे लोगों को भी शहर की तरफ पलायन करने से रोक पाएं। विज्ञान आश्रम अपने इस उद्देश्य में काफी हद तक सफल सिद्ध हो रहा है।

गौतम पांडेय: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन समूह के सदस्य हैं।

जीवन क्या है?

जे. बी. एस. हाल्डेन

मैं इस सवाल का जवाब नहीं देने वाला हूं। मुझे तो इस बात में भी संदेह है कि कभी इस सवाल का पूरा जवाब देना संभव हो पाएगा। कारण यह है कि हम यह तो जानते हैं कि जीवित होने पर कैसा लगता है, ठीक उसी तरह जैसे हमें पता है कि लालिमा या दर्द या मेहनत क्या चीज़ें हैं। लिहाज़ा हम इन चीज़ों का बयान किसी और चीज़ के रूप में नहीं कर सकते। मगर यह सवाल कोई बेकार सवाल नहीं है क्योंकि कई बार हम यह जानना चाहते हैं कि कोई व्यक्ति जीवित है या नहीं। जब हमारा सामना रोगजनक सूक्ष्मजीवों से होता है, तो यह काफी स्पष्ट होता है कि बैक्टीरिया भी जीवित

हैं। मगर बात जब खसरा या चेचक के वायरस की होती है तो मामला स्पष्टता से कोसों दूर होता है।

तो हमें जीवन का वर्णन किसी और चीज़ के रूप में करना पडेगा, भले ही वह वर्णन कितना ही अधूरा हो। मसलन, हम इस तरह के वक्तव्य का सहारा ले सकते हैं 'पदार्थ पर चेतना का प्रभाव', मगर कई कारणों से यह वक्तव्य उपयोगी नहीं है। जैसे, हो सकता है कि हम इस बात से सहमत हों कि इंसान और शायद कुत्तों में भी चेतना होती है मगर किसी घोंघे या आलू में चेतना खोजने के लिए आस्था को ज़रा ज़्यादा ही खींचना पडेगा। दूसरी ओर इस परिभाषा में कई प्रसिद्ध कलाकृतियों व पुस्तकों को शामिल करना होगा जिनमें उनके रचयिता का दिमाग झांकता है और रचयिता की मृत्यु के बरसों बाद भी ये पुस्तकें पाठकों पर असर डालती रहती हैं। इसी प्रकार से जीवन को एक जीवनी शक्ति के रूप में परिभाषित करना भी बेकार ही है। जॉर्ज बर्नाड शॉ और प्रोफेसर सी.ई.एम. जोअ्ड का विचार है कि जीवितों में एक जीवनी शक्ति होती है। वैसे तो मुझे संदेह है मगर यदि इस वक्तव्य में कोई अर्थ है तो आपको इस जीवनी शक्ति का आभास पदार्थ पर उसके असर से ही लगेगा। तो हमें जीवन को पदार्थ के रूप में ही परिभाषित करना होगा। आम जीवन में हम सजीवों को उनकी आकृति और टेक्सचर से पहचानते हैं। मगर ये चीज़ें तो मृत्यु के कुछ समय बाद तक नहीं बदलती। स्तनधारी और पक्षी जब ठंडे पड़ जाएं तो हम कहते हैं कि वे मर गए।

मगर यह जांच मेंढकों या घोंघों पर नहीं चलेगी। उनको हम मरा कहते हैं जब वे छूने पर भी हलचल न करें। परन्तु किसी पौधे के जीवित होने का एकमात्र प्रत्यक्ष लक्षण यह है कि उसमें वृद्धि होती है या नहीं, और यह पता करने में कई बार महीनों लग जाते हैं। बहरहाल, इन सभी परीक्षणों में एक बात समान है कि इनमें जीवन की कसौटी के तौर पर किसी-न-किसी गति या परिवर्तन का सहारा लिया गया है (ऊष्मा भी

परमाणुओं की बेतरतीब गति ही है)। इन सबमें एक और समानता यह है कि ये सब रासायनिक नहीं बल्कि भौतिक परीक्षण हैं। मेरे ख्याल से इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भौतिक की बजाए रासायनिक तरीके से हम जीवन के बारे में कहीं ज़्यादा समझ सकते हैं। मतलब यह नहीं है कि रसायन के लिहाज़ से जीवन को पूरी तरह परिभाषित कर दिया गया है। इसका मतलब यह ज़रूर है कि जीवन भौतिक की बजाए रासायनिक घटनाओं का क्रम (पैटर्न) है। शायद एक उदाहरण से बात ज़्यादा साफ हो जाएगी।

कल्पना कीजिए कि एक नेत्रहीन व्यक्ति और एक बधिर व्यक्ति मेकबेथ नाटक का मंचन और एलेक्ज़ेंडर नेव्स्की नामक फिल्म देखने जाते है। बधिर व्यक्ति को नाटक बहुत कम समझ में आएगा। उसे यही पता नहीं चलेगा कि डंकन का कत्ल हुआ है, किसने किया तो दूर की बात है। नेत्रहीन व्यक्ति को कम दिक्कत आएगी। शेक्सपीयर के नाटकों का प्रमुख पक्ष शब्द हैं। मगर फिल्म में स्थिति उलट होगी।

समस्त जीवन में सामान्य बात रासायनिक घटनाएं हैं। और ये विभिन्न जीवों में असाधारण रूप से समान हैं। हम कह सकते हैं कि जीवन मूलतः रासायनिक घटनाओं का एक ताना-बाना है और इसके साथ लगभग सभी जीवों में विशिष्ट आकृति, विशिष्ट किस्म की गति, विशिष्ट संवेदनाएं जुड़ी होती हैं और कुछ जीवों में एक उद्देश्य भी होता है। विभिन्न जीवों का रासायनिक संघटन काफी अलग-अलग होता है। पेड़ मूलतः लकड़ी के बने होते हैं जो इंसानों के घटकों के बहुत समान नहीं होती। हालांकि लकड़ी ग्लायकोजन के ज़्यादा नज़दीक होती है, जो हमारे अधिकांश अंगों में पाया जाता है। मगर किसी पेड़ की पत्तियों, तने और जड़ों – खासकर जड़ों में जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं वे मानव शरीर में होने वाले परिवर्तनों के काफी समान होते हैं। जड़ों को भी, बिल्कुल इंसानों की तरह ऑक्सीजन की ज़रूरत होती है। जड़ जीवित है या नहीं, यह भी
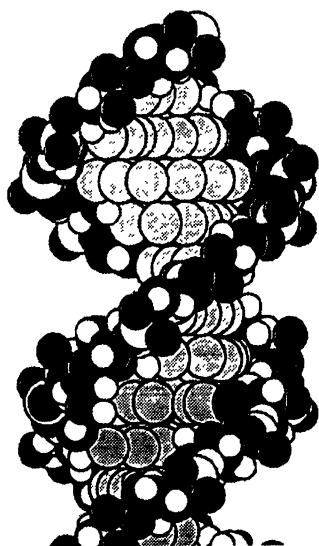
ठीक उसी तरह पता किया जा सकता है जैसे आप कुत्ते के बारे में पता करते हैं। आपको यह देखना होगा कि प्रति मिनट कितनी ऑक्सीजन की खपत हो रही है। और दोनों में ऑक्सीजन का उपयोग भी एक जैसी रासायनिक क्रियाओं के लिए होता है। मोटेतौर पर इन क्रियाओं को कम तापमान पर भोजन का दहन कह सकते हैं। सामान्य परिस्थितियों में ऑक्सीजन ग्लूकोज़ से तब तक क्रिया नहीं करती जब तक कि दोनों पदार्थों को काफी गर्म न किया जाए। मगर लगभग सारे जीवों में यह क्रिया एंज़ाइमों की मदद से सामान्य तापमान पर होती है। हम जितनी भी ऑक्सीजन का उपयोग करते हैं उसे पहले एक रसायन से जुड़ना होता है – यह पदार्थ एक प्रोटीन और लौह के जुडने से बनता है। वार्बर्ग ने इसकी खोज खमीर में 1924 में की थी। 1926 में मैंने भी कुछ अनगढ से प्रयोग किए थे जिनसे हरे पौधों, दीमकों और चूहों में भी इसी, करीब-करीब इसी, एंज़ाइम का पता चला था। उसके बाद यह एंज़ाइम कई अन्य जीवों में प्राप्त हुआ है।

यही बात कई अन्य क्रियाओं पर लागू होती है। आलू शर्करा को मंड में बदल देता है और आपका जिगर शर्करा को ग्लायकोजन में बदलता है। दोनों में लगभग एक-सी प्रक्रिया होती है। शर्करा को किण्वन (fermentation) द्वारा अल्कोहल में बदलने और मांसपेशियों के संकुचन, दोनों में अधिकांश चरण तो एक समान होते हैं। और भी कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। अलबत्ता, इन प्रक्रियाओं के अंतिम परिणाम बहुत अलग-अलग होते हैं।

किसी कारखाने में बहुत ही थोड़ा-सा परिवर्तन करके स्टेन-गनों की बजाए सिलाई मशीनें या साइकलें बनाई जा सकती हैं। इसी प्रकार से जिस प्रक्रिया से एक कीट अपनी त्वचा बनाता है और एक घोंघा अपना चिपचिपा स्राव (स्लाइम) बनाता है, वे लगभग एक सी हैं हालांकि अंतिम उत्पाद बहुत भिन्न है।

दरअसल, समस्त जीवन कुछ एक-सी रासायनिक क्रियाओं से मिलकर बना है, जो बहुत अलग-अलग पैटर्न में व्यवस्थित है। जैसे, जंतु भोज्य पदार्थों की खपत करते हैं जबकि अधिकांश पौधे इन्हें बनाते हैं। मगर पौधों और जंतुओं दोनों में ही निर्माण और विघटन की क्रियाएं लगातार चलती रहती हैं। संतुलन अलग-अलग हैं। एंजेल्स ने कहा था कि जीवन प्रोटीन के अस्तित्व का एक ढंग है (एंजेल्स ने जिस शब्द का उपयोग किया था उसका अनुवाद 'एल्बुमिनस पदार्थ' किया जाता है)। यह बात इस मायने में सही लगती है कि सारे एंज़ाइम प्रोटीन ही हैं। यह बात इस मायने में भी सही है कि सभी सजीवों के बीच बुनियादी समानता रासायनिक है। किन्तु एंजाइम

और प्रोटीन्स को शुद्ध रूप में प्राप्त किया जा सकता है और ये कांच की बोतल में भी अपनी विशिष्ट क्रियाएं जारी रखते हैं। मगर कोई जैव-रसायन शास्त्री नहीं कहेगा कि ये जीवित हैं।

इसी तरह से शेक्सपीयर के नाटक तो शब्दों से बने हैं मगर आइंस्टाइन की फिल्म में शब्द बहुत कम हैं। यह बात जानना उतना ही ज़रूरी है, जितना यह जानना कि जीवन रासायनिक क्रियाओं से मिलकर बना है। मगर स्वयं शब्दों से भी ज़्यादा महत्व शब्दों की जमावट का है। इसी प्रकार से जीवन रासायनिक क्रियाओं का एक पैटर्न है।

इस पैटर्न के विशेष गुणधर्म हैं। यह अपने ही जैसे पैटर्न को जन्म देता है, जैसाकि एक लौ भी करती है मगर यह पैटर्न स्वयं का नियमन भी करता है जबकि लौ ऐसा नहीं करती। इसके अलावा इस पैटर्न में कई विचित्र बातें हैं। यानी जब हम यह कहते हैं कि जीवन रासायनिक क्रियाओं का एक पैटर्न है तो हमने कुछ सच्ची और महत्वपूर्ण बात कही है। इसका व्यावहारिक महत्व यह है कि हम इसके कुछ हिस्से पर नियंत्रण करना सीख रहे हैं। इस ज्ञान के प्रारंभिक फल उपयोगी हैं। जैसे सल्फोनामाइड्स, पेनिसिलीन और स्ट्रेप्टोमायसीन।

मगर यह कहना कि हम जीवन को इसी तरह से पूरी तरह परिभाषित कर देंगे, उसे मशीन में तब्दील कर देने जैसा होगा। मेरे विचार में यह असंभव है। दूसरी ओर, मेरे विचार में यह कहना तो असत्य और निरर्थक होगा कि जीवन रासायनिक क्रियाओं से मिलकर नहीं बना है। यह वैसे ही होगा जैसे कोई कहे कि कविता शब्दों से नहीं बनी होती।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी एवं विख्यात विज्ञान लेखक। प्रस्तुत निबंध 1949 में प्रकाशित 'वॉट इज़ लाइफ' संकलन मे लिया गया है।
अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य की स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं।

विज्ञान और सहज ज्ञान चलते हैं साथ!
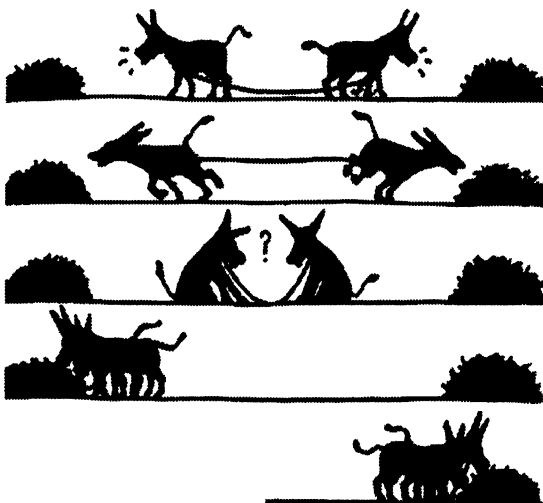
संदर्भ सदस्यता की दरें इस प्रकार हैं:

सदस्यता शुल्क	एक साल	दो साल	तीन साल
व्यक्तिगत/स्कूल	75 रुपए	140 रुपए	200 रुपए
अन्य संस्थाएं	150 रुपए	280 रुपए	350 रुपए

संदर्भ की आजीवन सदस्यता भी उपलब्ध है:

आजीवन सदस्यता	शुल्क
व्यक्तिगत	1000 रुपए
संस्थागत	2000 रुपए

संदर्भ का सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं।

चेक भेजते समय 25 रुपए अतिरिक्त भेजिए।

संपर्क करें: **एकलव्य**
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
पिन: 461001
फोन: 07574-253518 ई मेल: eklavyah@sify.com

कहानी सुनाने का हुनर

कृष्णकुमार

बच्चों को कहानी सुनाना वाकई एक हुनर है। आइए देखते हैं कौन-कौन सी बारीकियां होती हैं कहानी सुनाने में।

यह बड़े अफसोस की बात है कि हमारे प्राइमरी स्कूलों में पहली दो कक्षाओं के लिए प्रतिदिन कहानी सुनाने की कोई अलग 'घंटी' नहीं होती। यदि ऐसी व्यवस्था होती तो बच्चों को स्कूल में टिकाए रखने की समस्या कम-से-कम एक हद तक सुलझ जाती। बहुत से लोग कहेंगे कि मैं इस समस्या की गंभीरता की अवहेलना कर रहा हूं। बहुत संभव है कि मेरा सुझाव सुनकर

कई ऊंचे अधिकारी हिकारत के भाव से मुस्कुराएं। उनके विशाल अनुभव और प्रशासनिक ज्ञान ने यह समझ अवश्य उनके दिमाग से हटा दी होगी, जो मेरी समझ में उनके पास एक समय में ज़रूर रही होगी, कि कहानी सुनाने का बच्चों पर एक जादुई असर होता है।

यह बहुत ही गहरे अफसोस की बात है कि हमारी अध्यापक प्रशिक्षण संस्थाएं भी कहानी सुनाने को गंभीरता से नहीं लेतीं हालांकि उनमें से कुछ अपने पाठ्यक्रम में कहानी सुनाने के महत्व का ज़िक्र ज़रूर कर देती हैं।

मेरे मन में एक ऐसे दिन की कल्पना है जब छोटे बच्चों को पढ़ाने वाले हर शिक्षक से यह अपेक्षा की जाएगी कि कम-से-कम तीस पारम्परिक कहानियों पर उसका अधिकार हो। अधिकार से मेरा आशय है कि ये कहानियां उसे अच्छी तरह याद हों ताकि वह उन्हें इत्मीनान और आत्मविश्वास के साथ सुना सके। यह एक ऐसे समाज के लिए कोई बड़ी बात नहीं है जिसके पास हज़ारों कहानियों की एक लंबी विरासत है। तीस ऐसी कहानियां, जिन्हें अध्यापक अपनी मर्ज़ी से जब चाहे सुना सके, प्राइमरी स्कूल के पहले दो दर्जों का माहौल बदल कर रख देंगी। शर्त इतनी भर है कि दैनिक पाठ्यक्रम में कहानी सुनाने को एक सम्मानजनक जगह इस खातिर दी जाए कि कहानी सुनाना अपने आप में महत्वपूर्ण है।

कहानियां कहां से लाएं?

पिछले पैराग्राफ में मैंने एक विशेषण का इस्तेमाल किया है जिसे मैं अब आगे बढ़ने से पहले स्पष्ट करना चाहता हूं। मैंने लिखा है कि मैं पारम्परिक कहानियां सुनाने के पक्ष में हूं। युवा अध्यापकों को कहानी सुनाने का

कहानी

खरगोश कैसे बुद्धिमान कहलाया जाने लगा

बहुत समय पहले की बात है, एक दिन जंगल का राजा शेर भोजन के लिए रोज़-रोज़ शिकार करते-करते थक गया। उसने सोचा, चूंकि सब जानवर निर्विवाद रूप से उसे अपना राजा मानते हैं, इसलिए वह शिकार के पीछे भागने के बजाए, जानवरों को आज्ञा दे देगा कि उनमें से कोई एक रोज़ाना उसकी भूख मिटाने के लिए आ जाए।

उसने जंगल के जानवरों को अपने पास बुलाया और कहा, 'मेरे प्रजागणों, मुझे अपने भोजन के लिए रोज़ाना शिकार करना होता है, इससे सारा जंगल मेरे कारण डरा रहता है। मैं तो रोज़ केवल एक ही जानवर को मार कर खाता हूं, पर

प्रशिक्षण देने का मेरा अनुभव बताता है कि जब उनसे सुनाने लायक कहानियां तलाशने को कहा जाता है, तो वे प्रायः बच्चों की किसी पत्रिका में छपी हुई कहानियां ले आते हैं। उनमें से कुछ लोग कॉमिक्स कथाएं उठा लाते हैं और कुछ लम्बे चुटकुले और असली घटनाओं के बयान याद करके ले आते हैं। यह सही है कि इस किस्म की सामग्री को भी 'कहानी' की श्रेणी में रखा जा सकता है, लेकिन इस तरह की प्रत्येक कहानी से हम प्राइमरी स्कूल में पढ़ने वाले छः या सात साल के बच्चों पर जादुई असर करने की उम्मीद नहीं कर सकते।

परम्परा से मिली हुई कहानियों में ऐसी विशेषताएं होती हैं जो समकालीन कहानियों में, जिन्हें हम विविध रूपों और माध्यमों में देखते हैं, अनिवार्यतः नहीं पाई जातीं। इन विशेषताओं की चर्चा हम जल्दी करेंगे, लेकिन पहले मैं पारम्परिक कहानियों के कुछ स्रोतों का ज़िक्र करना चाहूंगा। सबसे पहले पंचतंत्र, जातक, महाभारत, सहस्र रजनी चरित्र, विक्रमादित्य की कहानियां और विभिन्न इलाकों की लोक-कथाएं सहज और समृद्ध स्रोतों की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। इनके बाद हम कथा सरितसागर, गुलिस्तां और बोस्तां की कहानियां और दुनिया भर की लोक-कथाओं को रख सकते हैं। ये स्रोत आसानी से उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए यदि कोई पाठ्यक्रम में कहानी सुनाने को एक नियमित जगह देना चाहता है तो उसे इन तमाम स्रोतों से चुनी गई कहानियों का एक संकलन बनाना होगा।

कहने लायक कहानी

एक अच्छी कहानी में कौन-सी

आप सब डरे-डरे रहते हैं। अब हम लोग एक तर्क-संगत व्यवस्था कर लेते हैं। रोज़ सुबह होते ही एक जानवर मेरे द्वारा खाए जाने के लिए अपने आप को मेरे सामने प्रस्तुत करेगा। ये आप आपस में फैसला कर सकते हैं कि वह कौन-सा जानवर होगा। इस तरह मैं शिकार करने की परेशानी से बच जाऊंगा। इसका मतलब यह भी होगा कि आप सब जंगल में निडरता से घूम सकेंगे। जानवरों ने आपस में विचार-विमर्श किया और माना कि यह एक तरीका है जो सभी के लिए फायदेमंद है। उन्होंने तय किया कि हर रोज़ शाम को एक पर्ची निकाली जाएगी। जिसका नाम पर्ची पर लिखा होगा वही अगले दिन शेर का भोजन बनेगा। यह नई योजना तुरन्त लागू कर दी गई, शाम को पर्ची निकाली जाती और सुबह एक बेचारा जानवर शेर के नाश्ते के लिए पेश हो जाता। यह तो सच है कि यह उस जानवर के लिए बहुत खराब बात होती, परन्तु इससे बाकी सभी जानवरों को

विशेषताएं होती हैं, यह जानने के लिए एक सरल रास्ता एक ऐसी कहानी की जांच करने का है जिसे बच्चे पीढ़ियों से आनंदपूर्वक सुनते आ रहे हैं। पंचतंत्र की शेर और खरगोश की कहानी एक ऐसा उदाहरण है। इस कहानी का कथानक उतना आसान नहीं है जितना हम कहानी से अपने परिचय के कारण मान लेते हैं। क्यों न हम पहले इस कहानी के प्रमुख मोड़ याद कर लें।

कहानी में एक दिन वह आता है जब नन्हें खरगोश को बूढ़े शेर के सामने पेश होना होता है। शेर के दरवाज़े पहुंचने तक खरगोश ने इतनी देर कर दी है कि शेर भूख के मारे पागल हो रहा है। यह निर्णायक क्षण शेर के साथ किसी भी तरह की सौदेबाज़ी के लिए एकदम अनुपयुक्त है क्योंकि शेर गुस्से से बुरी तरह भरा बैठा है, लेकिन खरगोश अनुपयुक्त क्षण में अपनी बात रखता है कि उसे इतनी देर कैसे हो गई? रास्ते में एक दूसरे शेर से मिलने की बात पूरी तरह झूठ है, लेकिन यह बात भूखे, नाराज़ शेर के शाही दिमाग में बैठ जाती है। अब वह पहले अपने प्रतिद्वंद्वी से निपटना चाहता है और इसके लिए वह खरगोश के साथ उस कुएं की तरफ चल पड़ता है जहां दूसरे शेर के रहने की बात उसे बताई गई है। इस दूसरे निर्णायक क्षण में खरगोश अपनी धोखेबाज़ी और शेर की पागल नाराज़गी और ईर्ष्या, जिसे उसी ने जगाया है, पर भरोसा करके आगे बढ़ता है। कुएं में अपनी परछाई देखकर शेर आपा खो बैठता है और कूदकर मर जाता है।

आइए, इस पुरानी, परिचित कहानी को ज़रा बारीकी से देखें। पहली बात तो यह है कि कहानी की विषयवस्तु में कोई उपदेश नहीं है। उल्टे, यह

घात लगाए घूमते शेर का डर नहीं रहता था, वे जंगल में आज़ादी से रह सकते थे। योजना सही तरह काम करती लग रही थी।

एक शाम को जब खरगोश के नाम की पर्ची निकली तो उसने यह घोषणा कर दी कि उसका, शेर का भोजन बनने का कोई इरादा नहीं है।

इस पर लोमड़ी बोली, "शेर अपना वादा निभा रहा है और अब हम निडरता से बाहर घूम सकते हैं।"

बंदर बोला, "खरगोश अगर तुम नहीं गए तो तुम हम सब को खतरे में डालोगे।"

"मैं इस निष्ठुर को हमेशा के लिए खत्म कर दूंगा", खरगोश ने ऐसे विश्वास के साथ कहा जैसा विश्वास वह असल में महसूस नहीं कर रहा था। "देखना,

कहानी सीधे-सीधे इस तरह के गंभीर सवालों से जूझती है – जैसे कि किसी भी पाश्विक ताकत के सामने या मौत के वास्तविक खतरे से अपने को कैसे बचाया जाए। आमतौर पर बच्चों से बातचीत के दौरान हम ऐसे प्रश्नों को नहीं उठाते, लेकिन ज़ाहिर है कि बच्चों की ऐसे प्रश्नों में गहरी रुचि होती है। हम पूछ सकते हैं कि इस रुचि का क्या कारण है, पर इस सवाल की चर्चा मैं कुछ देर में करूंगा। इस बीच मैं एक और बड़ी विशेषता पर विचार करना चाहता हूं। यह कहानी एक ऐसे छोटे प्राणी की है जो एक बड़े ताकतवर प्राणी द्वारा पैदा की गई मुसीबत से जूझ रहा है। इस मुसीबत से बचने के लिए छोटा प्राणी एक ऐसी तरकीब का प्रयोग करता है जिसे हम आमतौर पर अनैतिक कहते हैं।

इस तरकीब पर अमल करते समय खरगोश व्यक्तित्व के कुछ उम्दा गुणों की मिसाल पेश करता है। इन गुणों में साहस, खतरे के सामने आत्मविश्वास, किसी घटना के अंतिम क्षण तक अपना दिमाग ठंडा रखने की क्षमता, और अपने से ज़्यादा ताकत और उम्र वाले से उचित बर्ताव करना शामिल है।

हमें इस बात पर भी गौर करना चाहिए कि कहानी कितनी तेज़ गति से आगे बढ़ती है। शुरुआत में एक अजीब-सी व्यवस्था लागू की जाती है जिसके तहत रोज़ एक जानवर स्वेच्छा से बूढ़े राजा का शिकार बनेगा। इस तरह की दैनिक व्यवस्था स्थापित होने के बाद जल्दी ही छोटे खरगोश की बारी आती है और कहानी का केन्द्रीय हिस्सा प्रकट होता है। बाकी घटनाएं बहुत तेज़ी से घटती हैं, क्योंकि अपने को बचाने की एक खतरनाक रणनीति तय कर लेने के बाद खरगोश एक भी

पुलक बिस्वास

क्षण बर्बाद नहीं कर सकता। कहानी सुनने वाला संवादों के ज़रिए एक के बाद एक स्थिति से 'धक्का खाते हुए' आगे बढ़ता है। यह स्पष्ट रहता है कि सुनने वाले के पास इस बात का कोई विकल्प नहीं है कि वह स्थिति को खरगोश की निगाह से देखे।

यह संक्षिप्त विश्लेषण उन कारणों की पहचान के लिए पर्याप्त है जिनसे इस कहानी को बच्चों के बीच भारी लोकप्रियता मिली है। सबसे पहली बात यह है कि कहानी उन्हें एक ऐसा चरित्र यानी हीरो देती है जिसके साथ वे पूरा तादात्म्य बैठा सकते हैं। यह चरित्र है खरगोश। कहानी में उसकी भूमिका उसी तरह की चुनौतियों और मुसीबतों से गुज़रती है जैसी कि बच्चे अपने दैनिक जीवन में अक्सर महसूस करते हैं। वह छोटा और शक्तिहीन है, उसे एक ऐसा काम करना है जो वह करना नहीं चाहता, उसे एक ऐसे प्राणी के हाथों मारे जाने का डर है जिसके पास पूरी सत्ता भी है और शारीरिक ताकत भी। खरगोश की परिस्थिति के इन पहलुओं से मिलते-जुलते पहलू हर बच्चे की ज़िन्दगी में उभरते रहते हैं। यद्यपि हम उन्हें अक्सर देख नहीं पाते क्योंकि हम माता-पिता और अध्यापक की भूमिकाएं निभाने में बेहद व्यस्त रहते हैं। उदाहरण के तौर पर हम में से बहुत कम लोग यह जानते हैं कि अचानक होने वाली मृत्यु का डर बचपन में चिन्ता के सबसे बड़े स्रोतों में शामिल है। किसी बड़े और मज़बूत व्यक्ति से आमना-सामना होने की आशंका भी इसी प्रकार की चिन्ता पैदा करती है।

कहानी शुरू होते ही बच्चों का ध्यान इसलिए खींचती है क्योंकि बच्चे स्वयं को कहानी में देख सकते हैं। इसके

कभी तुम सब मुझे धन्यवाद दोगे।''

जंगली मुर्गा बोला, ''अगर हमने देखा कि शेर फिर शिकार के लिए घूमने लगा है तो हम सब तुम्हें शुक्रिया नहीं कहेंगे।''

''यह सब तुम मुझ पर छोड़ दो।'' खरगोश बोला और आराम से लेट गया। परन्तु खरगोश सोया नहीं। वह घंटों लेटा-लेटा सोचता रहा कि ऐसा क्या हो सकता है, जिससे वह अपनी और अपने साथियों की मदद कर सके और जंगल को उस दुष्ट शेर से छुटकारा मिल जाए। सुबह होते-होते उसे एक उपाय सूझा। जब उसने सब कुछ विस्तार से सोच लिया और उसे तसल्ली हो गई कि उसकी योजना काम करेगी, तब वह अपने आप को तरोताज़ा करने के लिए थोड़ा सो लिया। वह शेर की गुफा तक पहुंचा जब सूरज ऊपर तक चढ़ आया था। शेर बेसब्री से उसका इंतज़ार कर रहा था और ज़ोर-ज़ोर से गुर्रा रहा था। वह गुस्सा था, क्योंकि एक तो

बाद कहानी में होने वाली घटनाओं से उनके आकर्षण को बल मिलता है। नन्हा खरगोश एक रणनीति चुनता है और वह कारगर सिद्ध होती है। वह न केवल उसके लिए सफल होती है, बल्कि समस्या को हमेशा के लिए और सबके लिए खत्म कर देती है। छोटे बच्चों को इसी तरह का हल पसंद आता है। खरगोश की रणनीति के आकर्षण का एक और कारण यह है कि वह बच्चों में हमेशा पाई जाने वाली एक भोली-भाली इच्छा पर आधारित है – बहाना बनाने की इच्छा। देरी से आने के खरगोश द्वारा दिए गए बहाने में एक और आकर्षण यह है कि उसका उद्देश्य अपनी जान बचाना नहीं, शेर को मारना भी है। वास्तव में खरगोश की दुविधा इसलिए इतनी कठिन है कि क्योंकि वह अन्यायी को जान से मारे बगैर खुद को बचा नहीं सकता। इसी तरह कहानी बच निकलने का एक ज़बरदस्त नाटक पेश करने के लिए, बहादुरी से किए गए नाश का इस्तेमाल करती है। यदि उसमें कोई नैतिकता है तो वह आत्म-रक्षा की नैतिकता ही है। इस बात को भी हम तभी ठीक से देख सकते हैं जब हम कहानी को बच्चे की निगाह से देखें। यदि हम बड़ों की निगाह से इस कहानी को देखने की ज़िद करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि यह एक अनैतिक कहानी है – जैसी कि वह दरअसल है भी।

ज़रूरत क्या है?

अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा कि बच्चों के लिए एक अच्छी कहानी सुनने का नैतिकता या नैतिक शिक्षा से कोई संबंध नहीं है या कम-से-कम सीधा संबंध नहीं है। अधिक गहरे स्तर

खरगोश का देर से आना उसके अपमान का प्रतीक था और दूसरा वह भूखा भी था। जैसे ही खरगोश आगे बढ़ा, शेर दहाड़ा, "क्या तुम मेरा नाश्ता हो?"

"हां, सरकार", खरगोश ने आदर से उत्तर दिया।

"तो फिर तुम देर से क्यों आए?" शेर ने गुस्सा होकर पूछा।

"मैं बताता हूं, सरकार", खरगोश बोला। "तड़के जब मैं यहां आ रहा था तो मुझे एक दूसरे शेर ने रोक लिया। उसने कहा कि मैं आगे नहीं जा सकता क्योंकि वह मुझे नाश्ते में खाना चाहता है। मैंने उनसे मिन्नतें की कि मैं नहीं रुक सकता, मुझे जंगल के राजा की आज्ञा के अनुसार उनके पास पहुंचना है। इस पर वह बहुत गुस्सा हो गया और कहने लगा कि वह ही जंगल का राजा है। और वह दहाड़ा, "जाओ और जाकर मेरा अधिकार छीनने वाले शेर को कहो कि, मैं यहां हूं और मैं आकर तुम्हें मार डालूंगा। बाकी सभी जानवरों को भी कह दो कि जंगल

पर खरगोश और शेर की कहानी में एक प्रेरक बात है। वह दिखाती है कि खतरे के सामने दिमाग ठंडा रखने के क्या फायदे हैं। कहानी यह भी दिखाती है कि सोच-समझ और कल्पना से काम लेना कितना महत्वपूर्ण है। लेकिन ये बातें पारम्परिक अर्थ में 'नैतिक शिक्षा' नहीं कही जा सकतीं। वास्तव में महान पारम्परिक कहानियां शायद ही पारम्परिक अर्थ में नैतिक शिक्षा देती हों। हमारे लिए ज़्यादा ज़रूरी इस बात पर गौर करना है कि कहानी सुनाने का उद्देश्य बच्चे का नैतिक विकास करना नहीं है। कहानी सुनाने से होने वाले लाभ काफी अलग हैं, और वे इस प्रकार हैं।

कहानियां अच्छी तरह सुनने की क्षमता का विकास करती हैं: अच्छा श्रोता कौन है? वह जो अन्त तक सुनता रहे। यह बात हम बहुत से लोगों के बारे में नहीं कह सकते। यहां तक कि औपचारिक बहसों के दौरान भी लोग लगातार टोकते रहते हैं। इसका कारण उनकी यह मानकर चलने की आदत है कि उन्हें पहले से पता है कि बोलने वाला क्या कहेगा। एक और कारण यह है कि उनमें सुनने का धैर्य नहीं होता। आश्चर्य की बात नहीं कि सुनने को अब सिर्फ एक कौशल नहीं, बल्कि एक रवैया माना जाने लगा है जिसे प्रोत्साहित करने के लिए ऊंचे स्तर के प्रबंधन और प्रशासन के कोर्स उपलब्ध हैं। कहानी सुनाने से हमारी ज़िन्दगी के उस निर्णायक दौर में धैर्यपूर्वक सुनने की क्षमता विकसित होती है जब सुनने की आदत और उसमें निहित रवैया जीवन भर चलने वाली आदतों का रूप ले सकते हैं।

यह बात थोड़ी अजीब है कि अच्छे श्रोता हमारे उस देश में दुर्लभ हो गए हैं जहां एक पुरानी और मज़बूत मौखिक संस्कृति रही है। मेरा अंदाज़ है कि इस परिस्थिति का संबंध बचपन में कहानी सुनाने की अवहेलना से है। ऐसा लगता है कि आधुनिक भारत के पास बच्चों को नियमित रूप से कहानी सुनाने का समय नहीं है। इस कमी के परिणाम अब स्पष्ट होते जा रहे हैं।

कहानी सुनाने से अंदाज़ लगाने का प्रशिक्षण मिलता है: अपनी पसंद की कहानियां बच्चे बार-बार सुनना चाहते हैं। इसका कारण यह है कि कहानी से एक बार अपना परिचय हो जाने पर वे इस परिचय का इस्तेमाल गौर से सुनने की अपनी बढ़ती हुई क्षमता का परीक्षण करने के लिए करते हैं। स्वाभाविक है कि ये परीक्षण अनजाने में होता है। बच्चों को इस बात से खुशी होती है कि कहानी को दूसरी या तीसरी बार सुनते समय वे

का असली राजा आ गया है और वह पाखंडी को भगा देगा।" "इसलिए सरकार" खरगोश आगे बोला, "इससे पहले कि आप मुझे अपना नाश्ता बनाएं, मैं आपको सावधान करता हूं कि आपकी जान को बहुत खतरा है।"

शेर को अपनी भूख और अनादर के कारण बहुत गुस्सा आ गया। वह ज़ोर से चिल्लाया, "पाखंडी! पाखंडी तो वह है, मुझे अभी उसके पास ले चलो, मैं उसे दिखाऊंगा कि कौन जंगल का राजा है।"

खरगोश चल पड़ा और उसके पीछे-पीछे चल पड़ा शेर।

"अब ध्यान से चलें, हम उस बगावती लुटेरे की गुफा तक पहुंच रहे हैं।" खरगोश फुसफुसाया।

सफलतापूर्वक अंदाज़ लगा सकते हैं कि आगे क्या होगा। अंदाज़ के सही सिद्ध होने का आनन्द ही वह इनाम है जो कहानी सुनने से एक अनुभवी श्रोता को मिलता है, और यह सिर्फ आनन्द नहीं है। इससे कहानी सुनने वाले बच्चे की अंदाज़ लगाने की क्षमता से विश्वास भी बढ़ता है। सर्वांगीण विकास में इस विश्वास की एक गहरी भूमिका होती है – खासकर पढ़ने की क्षमता के विकास में। यह क्षमता स्कूल के शुरुआती दो वर्षों की सबसे बड़ी चुनौती होती है। साक्षरता और पढ़ने की क्षमता के विकास में अंदाज़ लगाने की क्षमता के योगदान की विस्तृत चर्चा मैंने अपनी पुस्तक 'बच्चे की भाषा और अध्यापक' में की है।

अंदाज़ लगाने की क्षमता का महत्वपूर्ण योगदान अन्य विषयों, विशेषकर गणित और विज्ञान में भी है। गणित की पढ़ाई में नियमों के इस्तेमाल से समस्या का हल निकालने का सैद्धांतिक महत्व है। कहानियों में भी नियम होते हैं। फर्क यही है कि ये नियम रूपकों की शक्ल में होते हैं। मिसाल के तौर पर कई कहानियां इस नियम का पालन करती हैं कि छोटे प्राणी बड़ों को धोखा देकर विजय प्राप्त करते हैं। खरगोश और शेर की कहानी में यही होता है। कहानियां सुनते-सुनते बच्चे उनमें निहित नियम पकड़ लेते हैं, और यह पकड़ उनकी अंदाज़ लगाने की क्षमता को बेहतर बनाती है।

कहानियां हमारी दुनिया को फैलाती हैं: मैं उस दुनिया की बात कर रहा हूं जिसे हम अपने सिर या दिमाग में लेकर चलते हैं। कहानियां उसे इस अर्थ में फैलाती हैं कि हम उनके ज़रिए ऐसे लोगों और स्थितियों को जान लेते हैं जिनसे हमारा वास्ता अपनी

वास्तव में वह खरगोश, शेर को एक गहरे कुएं की तरफ ले जा रहा था। जब वह वहां पहुंचा तो उसने शेर को थोड़ा रुकने को कहा और खुद धीरे से कुएं के पास आया। फिर वह किनारे के ऊपर से नीचे पानी को ध्यान से देखने लगा। उसने अपने छोटे से चेहरे का साफ प्रतिबिम्ब देखा। फिर उसने शेर को आवाज़ दी और कहा, "यहां नीचे देखिए, यही है जो आपका शासन छीनना चाहता है।"

शेर गुस्से से त्यौरियां चढ़ाता और बड़-बड़ करता कुएं की दीवार के किनारे तक पहुंच गया। उसने जब नीचे झांका तो उसे एक क्रोधित शेर का त्यौरी चढ़ा और बड़-बड़ करता हुआ मुंह दिखा जो उसे घूर रहा था। वह उस दुश्मन पर कूदा, थोड़ी देर छटपटाया और फिर डूब गया।

खरगोश फटाफट दूसरे जानवरों के पास वापस पहुंचा और यह घोषणा कर दी कि उसने शेर को मार दिया है, अब उन सब के डरने के दिन खत्म हो गए हैं। फिर

ज़िन्दगी में कभी नहीं पड़ा।

सवाल है कि ऐसे लोगों या स्थितियों को जानने से क्या फायदा है? फायदा यह है कि वे जीवन का अंग हैं। भले हम व्यक्तिगत रूप से उन्हें न जानते हों पर वे हमें दिमागी रूप से परेशान करती हैं, खासकर बचपन में – लेकिन एक सामान्य अर्थ में यह परेशानी जीवन भर चलती है। उदाहरण के लिए छोटे बच्चे बुरे आदमियों की फिक्र करते रहते हैं, भले ही उनके आसपास कोई बहुत बुरा आदमी न हो। इसी तरह वे भीतर यह आशा करते हैं कि उन्हें किसी बेहद होशियार, सुन्दर या अच्छे इंसान से मिलने का मौका मिलेगा। आदर्श रूप की कल्पना और भयंकर विपत्ति का डर, दोनों ही बाल-मनोविज्ञान में शामिल हैं। पारम्परिक कहानियां इस मनोविज्ञान को व्यंजित करती हैं, और इसीलिए वे बच्चों को आसानी से खींच लेती हैं। कहानी सुनने से छोटा बच्चा, जो अभी साक्षर नहीं बना है, अपनी वास्तविक दुनिया से कहीं बड़ी दुनिया के कल्पित रूप का अनुभव पा लेता है।

एक बात और भी है कि कहानियों से मिलने वाला अनुभव बेतरतीब नहीं होता। उलटे, यह अनुभव हमारी अराजक दुनिया को एक संतोषजनक क्रम या बुनावट में ढाल देता है। एक गहरे अर्थ में यह एक 'नैतिक' बुनावट होती है – लेकिन एक आम अर्थ में नहीं। कमज़ोर जीतता अवश्य है, लेकिन कई बार गलत साधनों का प्रयोग करके। भूखे शेर से खरगोश का झूठ बोलना एक उदाहरण है।

कहानी सुनना और पढ़ना

अंत में, कहानी कहने का महत्व हम बच्चे के भाषाई साधनों के विस्तार में देख सकते हैं। शब्द एक बहुत ही निजी सम्पत्ति होते हैं। वे हमें एक बहुत निजी अर्थ में संसार की चीज़ों को अलग-अलग नाम देने की क्षमता देते हैं। लेकिन दूसरी तरफ शब्द एक ऐसी सामाजिक सम्पत्ति भी है जिसका इस्तेमाल हम दूसरों से अपने अनुभव बांटने के लिए करते हैं। शब्दों की यह दो-तरफा प्रकृति ही उन्हें अर्थ देती है। उदाहरण के लिए बच्चे को अपने निजी अनुभव से यह मालूम होता है कि भूख लगने पर शेर को कैसा महसूस हो रहा होगा। कहानी बच्चे को 'भूखा' शब्द का अर्थ इस तरह फैलाने में मदद देती है कि उसमें शेर भी शामिल हो जाए। बच्चे जितनी ज़्यादा कहानियां सुनेंगे, उनकी शब्दावली में उतना ही दूसरों के अनुभवों का अर्थ शामिल करने की सामर्थ्य आती जाएगी। इस तरह देखें तो बचपन में सुनी गई कहानियां आगे चलकर पढ़ने की क्षमता का आधार बनती हैं।

वास्तव में कहानी के संदर्भ में ऊपर कही गई चारों बातें पढ़ने पर भी लागू होती हैं। पढ़ने की क्षमता बच्चों का परिचय भाषा में निहित नियमों और संरचनाओं से कराती है। अच्छी तरह पढ़ने की क्षमता होशियारी से अंदाज़ लगाते चलने की आदत पर निर्भर है। भाषा के नियमों से परिचित होकर बच्चे यह अंदाज़ लगा लेते हैं कि वाक्य या कथन में आगे क्या आने वाला है। इस दृष्टिकोण से कहानी सुनाना बच्चों को साक्षर बनाने के लिए उपयोगी है।

उसने सबको अपने कारनामे की कहानी सुनाई और बताया कि उसने यह सब कैसे किया। सभी जानवरों ने उसकी चतुराई की खूब प्रशंसा की।

उस दिन के बाद से जानवर अपनी समस्याएं सुलझवाने और झगड़े दूर करने के लिए हमेशा खरगोश से गुज़ारिश करते और उसके पास सलाह लेने जाते। बस इसी तरह वह 'बुद्धिमान खरगोश' के नाम से जाना जाने लगा।

स्रोत: *बर्मा और धाय की परियों की (...)ां, सोमैया, बंबई।*

कहानी सुनाने का कौशल

कहानी सुनाने की कला पर अधिकार पाने के इच्छुक व्यक्ति के लिए ज़रूरी है कि वह स्मृति को गंभीरता से लें। यदि कहने वाले को कहानी ठीक से याद नहीं है तो वह अच्छी से अच्छी कहानी को भी चौपट कर सकता है। याद कर लेने से आत्मविश्वास बढ़ता है और कहानी कहने वाला इत्मीनान महसूस करता है। कहानी सुनने वालों से रिश्ता बनाने के लिए इत्मीनान या चैन बहुत ज़रूरी है। दूसरी बात यह है कि जब तक कहानी अच्छी तरह याद हो जाती है तो कहने वाला उसे एक खाके या खाली नक्शे की तरह इस्तेमाल कर सकता है।

इस नक्शे को अपनी सुविधा या सुनने वालों के मूड के अनुसार भरा जा सकता है। कहानी को छोटा या बड़ा करना बहुत महत्वपूर्ण होता है। किसी दिन आप चाहते हैं कि जल्दी-जल्दी उस बिन्दु पर पहुंच जाएं जहां खरगोश शेर के सामने खड़ा है। किसी और दिन आपकी इच्छा होती है कि कहानी के पहले हिस्से को फैलाएं, इस बात की विस्तृत चर्चा करें कि भोजन के इंतज़ार में शेर के मन में कैसे-कैसे विचार आ रहे होंगे और शेर की गुफा की तरफ जाते हुए खरगोश के दिमाग में कौन-कौन-सी बातें और रणनीतियां उभर रही होंगी।

कहानी को लेकर बच्चों के साथ संवाद कई तरह के विकल्प पेश करता है। आप चाहें तो नाटकीय ढंग से दो आवाज़ों में बोलें, इशारों या मुद्राओं से भी काम लें। संवाद को सजीव बनाने के लिए आप हाथ की कठपुतलियों का प्रयोग भी कर सकते हैं। आप कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक चलकर दोनों चरित्रों की भूमिका खुद निभा सकते हैं। ये सभी संभावनाएं रोचक हैं और वे हमें इस बात की चुनौती देती हैं कि हम एक ही कहानी को साल-दर-साल या एक ही साल में कई बार सुनाते हुए अपनी सामर्थ्य बढ़ाते चलें।

कहानी सुनाना यदि किसी शिक्षक की दैनिक ज़िन्दगी में शामिल है तो वह कभी उबाऊ नहीं हो सकती। पर कहानी को रोज़ की घटना बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि हम प्राइमरी स्कूल के पाठ्यक्रम की अपनी धारणाओं को गंभीरता पूर्वक बदलें।

कृष्णकुमार: प्रसिद्ध शिक्षाविद एवं लेखक। शिक्षा के मुद्दों पर सतत चिंतन एवं लेखन। राज, समाज और शिक्षा; बच्चे की भाषा और अध्यापक आदि चर्चित कृतियां हैं।

चित्र: अतनु रॉय, देशराज एवं पुलक बिस्वास।

यह लेख 'प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे' के जनवरी -अप्रैल 2000 अंक से लिया गया है।

क्या हम अपने विद्यार्थियों के साथ न्याय कर रहे हैं?

स्कूली शिक्षा के हालातों की चर्चा तो हम सब करते ही रहते हैं, परन्तु उच्च शिक्षा की स्थिति उससे बहुत फर्क है क्या? इस सवाल की जांच पड़ताल करता है यह लेख।

ाशि सक्सना।

ग्यारह साल से ज़्यादा से, मैं दिल्ली विश्वविद्यालय के दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज में रसायन शास्त्र पढ़ा रही हूं। यहां मैं आपके साथ अपने अनुभव, अवलोकन और सबसे ज़रूरी – अपने सरोकार बांटना चाहती हूं।

मैंने पढ़ाने के प्रति अपनी चाहत के चलते अध्यापन को पेशे के रूप में चुना था। मुझे हमेशा से ही लगता रहा है कि जब आप अपने विद्यार्थियों को कुछ समझा पाते हैं तो उनके चेहरों पर जो उमंग छलकती है, उससे ज़्यादा अच्छा इनाम और कोई हो ही नहीं सकता। मुझे पढ़ाना अब भी पसन्द है और मैं अब भी लगातार ऐसे मौकों की तलाश में रहती हूं।

पर मुझे मानना पड़ेगा कि इस व्यवसाय की अपनी पीड़ा भी है। विज्ञान की शिक्षिका होने के नाते मुझे

प्रायोगिक (प्रेक्टिकल) कक्षाएं भी लेनी होती हैं, इन कक्षाओं में प्रत्येक विद्यार्थी के साथ अलग-अलग संपर्क करना संभव हो पाता है। यहीं हम उनकी व्यक्तिगत ताकतों और कमज़ोरियों को आंक सकते हैं। और यहीं हम इस बात का सही-सही जायज़ा ले सकते हैं कि वे दरअसल कितना सीख पा रहे हैं। पर साथ ही यही वे कक्षाएं हैं जिन्होंने मेरी कई रातों की नींदें उड़ाई हैं। अध्यापन के इन कई सालों के अनुभव ने मेरी आंखें खोल दी हैं। मुझे बार-बार यह एहसास हुआ है कि हमारे विद्यार्थियों का एक बड़ा वर्ग प्रयोग करने के लिए दिए गए निर्देश तक को या तो समझ ही नहीं पाता, या फिर बमुश्किल समझ पाता है। विद्यार्थियों के बड़े वर्ग से मेरा मतलब 60-65 प्रतिशत छात्र-छात्राओं से है। ये सभी ईमानदार व अनुशासित विद्यार्थी हैं जो पूरी मेहनत से वह सब समझने की कोशिश करते हैं जो उन्हें बताया जाता है। परन्तु यह भी साफ दिखाई देता है कि उन्हें प्रयोग करने के निर्देश समझने तक में काफी कठिनाई होती है। ऐसी स्थिति में यह मान लेना बहुत मुश्किल है कि वे उन प्रयोगों को समझ पाते होंगे जो वे करते हैं, इन प्रयोगों के ज़रिए किन्हीं अवधारणाओं को सीख पाते होंगे – जैसा कि किसी भी विज्ञान के पाठ्यक्रम में अपेक्षित होता है। मैं अक्सर यह सोचती हूं कि न जाने वे उन थ्योरी कक्षाओं में कितना समझ पाते होंगे जहां हम उन पर बेहद मुश्किल विषयों से भरा एक भारी-भरकम पाठ्यक्रम लाद देते हैं।

दोष किसका है?

क्या इन हालातों के लिए विद्यार्थियों को दोष दिया जा सकता है? मेरा जवाब है 'कतई नहीं'। अगर यह बात विद्यार्थियों के केवल एक छोटे प्रतिशत के लिए सही होती तो मैं आसानी से उन्हें दोषी ठहरा कर अपना पल्ला झाड़ लेती। परन्तु 60-65 प्रतिशत सचमुच एक बहुत बड़ी संख्या है और यह निश्चित ही हमारी शिक्षा व्यवस्था की एक भीषण 'असफलता' है। यह दुखद है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था हमारे इतने सारे बच्चों की संभावनाओं और क्षमताओं को बढ़ावा देने के बजाए उन्हें कुचल रही है।

मेरे कॉलेज में यह कैफियत दी जाती है कि ये वो छात्र-छात्राएं हैं जिन्हें बारहवीं में सिर्फ 55-60% नम्बर मिले थे, इसलिए यह कोई अचरज की बात नहीं कि उनका स्तर इतना नीचे है। पर कहानी यहां खत्म नहीं होती क्योंकि दिल्ली विश्वविद्यालय के कई अन्य कॉलेज के शिक्षकों के अवलोकन भी इसी से मिलते जुलते हैं। ये वो कॉलेज हैं जहां कहीं बेहतर

नम्बर से बारहवीं पास विद्यार्थियों को ही दाखिला मिल पाता है। दिल्ली विश्वविद्यालय का विज्ञान शिक्षा एवं संचार केन्द्र (सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन एण्ड कम्युनिकेशन) हर साल 'क्वेस्ट' नाम से एक अन्तर महाविद्यालयीन प्रतियोगिता का आयोजन करता है। इस काफी प्रतिष्ठित प्रतियोगिता में अवधारणात्मक समझ और तार्किक रूप से सोच पाने की क्षमता को परखने पर ज़ोर दिया जाता है। इस प्रतियोगिता का संचालन करने वाले कॉलेज और विश्वविद्यालय के शिक्षक, अक्सर ऊंचे दर्जे के कॉलेज से आने वाले प्रतियोगियों तक के खराब प्रदर्शन की शिकायत करते हैं। यह सही है कि अपवाद मौजूद हैं, पर वे तो अपवाद ही हैं। यह वैसा ही है जैसा दिल्ली विश्वविद्यालय के एक शिक्षक अक्सर कहते हैं – कि वे चन्द लोग जो अपने अन्दर मौजूद संभावनाओं का विकास कर पाते हैं इस व्यवस्था की मदद से नहीं, इसके बावजूद ऐसा कर लेते हैं।

ये अनुभव मेरे सामने कुछ बुनियादी सवाल खड़ा कर देते हैं। क्या हमारे पढ़ाने के तरीकों में कोई बहुत गंभीर गड़बड़ी है? छात्रों के मूल्यांकन के हमारे तरीके कितने भरोसेमंद हैं? क्या हम अपने विद्यार्थियों के साथ न्याय कर रहे हैं? यहां मैं इनमें से दूसरे सवाल के बारे में अपने विचार बांटूंगी, हालांकि मुझे लगता है कि ये तीनों ही विषय आपस में जुड़े हुए हैं।

चलिए, मैं फिर से 'क्वेस्ट' के उदाहरण से शुरू करती हूं। इस प्रतियोगिता में हिस्सा लेने वाले विद्यार्थी अपने-अपने कॉलेज के सबसे बेहतर छात्र-छात्राओं में से होते हैं। इन्हें या तो बारहवीं में या स्नातक (डिग्री) की पढ़ाई के पहले या दूसरे साल की परीक्षा में काफी अच्छे नंबर मिले होते हैं। विभिन्न परीक्षाओं में उनके प्रदर्शन के चलते उनसे यह अपेक्षा होती है कि वे अपने विषय को अच्छी तरह जानते होंगे। पर ऐसा होता नहीं है। जब 'क्वेस्ट' जैसे मंच पर उनकी अवधारणात्मक समझ को परखा जाता है तो वे इतना अच्छा नहीं कर पाते हैं। इससे स्पष्ट रूप से यह ज़ाहिर होता है कि मूल्यांकन के हमारे तरीकों में गंभीर सीमाएं हैं। ये तरीके हमारे विद्यार्थियों की समझ के स्तर को आंकने में पूरी तरह से नाकाम हो रहे हैं।

सीमित सरोकारों का नतीजा

फिर भी, हमारे कॉलेजों में अगर विद्यार्थियों के प्रति कोई सरोकार है भी तो वह परीक्षा में उन्हें मिलने वाले नंबरों तक ही सीमित है। शिक्षक कभी इस बात की चर्चा नहीं करते कि कक्षा में छात्र-छात्राओं का रुख कैसा होता है। इस बात पर कभी कोई परेशानी ज़ाहिर नहीं की जाती कि

विद्यार्थी कक्षाओं में, अधिकतर, बुत की तरह बैठे बेजान तरीके से बस ग्रहण करते रहते हैं; कि कोई अवधारणा समझने पर या अवधारणाओं के बीच कोई रोचक जुड़ाव देख पाने पर, या फिर पढ़ाई का अपने रोज़ के जीवन से कोई रिश्ता जोड़ पाने पर शायद ही कोई चमक और खुशी विद्यार्थियों के चेहरों पर दिखाई देती है। शिक्षक इस बात की चर्चा भी नहीं करते कि बच्चे सवाल नहीं पूछते, कोई शंका नहीं बताते, कक्षा में पढ़ाते वक्त उनके द्वारा की गई गलतियों को भी नहीं पकड़ पाते। यह बात भी शिक्षकों को परेशान नहीं करती है कि विद्यार्थी कक्षा में ऐसे सवाल कम ही पूछते हैं जिनके जवाब उन्हें पता न हों, या जो उन्हें कम-से-कम कुछ देर के लिए फंसा दें, और इनके जवाब बताने के लिए उन्हें सोचना या पढ़ना पड़े। अगर विद्यार्थी प्रश्न नहीं पूछते हैं तो इसके दो कारण हो सकते हैं – या तो वे सब कुछ समझते हैं, या वे कुछ भी नहीं समझ पा रहे। पहला तो नामुमकिन है। तो क्या विद्यार्थी, जो कुछ उन्हें बताया जाता है, उसमें से बहुत कम ही समझ पाते हैं? अपनी एक कृति में आर. के. नारायण ने ठीक ही कहा है कि केवल अधूरी समझ से ही शंकाएं पैदा होती हैं।

यह सब कुछ शायद 'सामान्य' मान लिया जाता है। परन्तु यही सब तो सीखने की प्रक्रिया के संकेतक हैं। फिर भी ये शिक्षकों में किसी बेचैनी का कारण नहीं बनते। एक ही चिंता सताती है उन्हें, कि विद्यार्थियों को अच्छे नम्बर मिल रहे हैं या नहीं। यह चिन्ता तो सही ही है, और हो सकता है कि आप सवाल करें कि इस सरोकार में क्या बुराई है? मैं पुरज़ोर यह कहना चाहती हूं कि अगर 'एकमात्र' या 'प्रमुख' सरोकार यही हो, तो इसके गंभीर नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं।

परीक्षा से बंटाधार

जब एकमात्र सरोकार यही हो तो परीक्षा प्रणाली समूची कक्षा को ही नियंत्रित करने लगती है। शिक्षक चुनकर सिर्फ उन्हीं टॉपिक (प्रसंगों) पर ध्यान देते हैं जो परीक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हों। वो भी कुछ इस तरह से पढ़ाए जाते हैं कि विद्यार्थी परीक्षा में आसानी से इनसे निपट सकें। प्राथमिकता विद्यार्थियों को अवधारणा समझने में मदद करने की नहीं होती, जबकि किसी भी विषय को समझने के लिए यह निहायत ज़रूरी होता है। ऐसा करना तो समय की बरबादी माना जाता है क्योंकि परीक्षा में समझ को तो जांचा ही नहीं जाना होता। उदाहरण के लिए विद्यार्थी उष्मागतिकी (Thermodynamics) जैसे भौतिक विज्ञान के एक कठिन क्षेत्र की एकदम उथली समझ लेकर भी अच्छे नम्बर

पा सकते हैं। वे अच्छे नंबर पा भी लेते हैं, वह भी बगैर यह जाने कि वे इस विषय को बिल्कुल भी नहीं समझ पाए हैं।

इस तरह के विषयों के सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं जिन्हें कक्षाओं में वो महत्व नहीं दिया जाता जैसी कि विषय की मांग होती है। कक्षा में अधिकांश वही तरीके अपनाए जाते हैं जो बच्चों को परीक्षा के लिए तैयार कर सकें। मुझे डर है कि यह ठीक वही तरीका है जो निजी कोचिंग क्लासों में उपयोग में लाया जाता है।

इस परिस्थिति में शिक्षकों के लिए विद्यार्थियों को मुश्किल लगने वाली अवधारणाओं की ओर ध्यान देना गैर-ज़रूरी बन जाता है। कक्षा में पढ़ाने के नए तरीके खोजना, नई पद्धतियों की तलाश करना महत्वहीन हो जाता है। इनके बारे में शिक्षकों के बीच किसी भी तरह की चर्चा या विचारों का आदान-प्रदान नहीं होता है। मुझे लगता है कि इससे न सिर्फ विद्यार्थी इन मुश्किल अवधारणाओं को सीखने के मौके खो देते हैं, बल्कि ये शिक्षकों के अपने विकास के लिए भी बाधा बन जाते हैं।

बांटे जाओ अंक

मुझे तो बहुत तीव्रता से यह भी महसूस होता है कि अच्छे नम्बरों का यह नशा, अपनी तरह से मूल्यांकन प्रणाली पर भी असर डालता है। दिल्ली विश्वविद्यालय की स्नातक परीक्षा के प्रश्न पत्रों को गौर से देखने पर साफ दिखाई पड़ता है कि इनमें विद्यार्थियों में विषय की समझ या विश्लेषण की क्षमता पर बहुत महत्व नहीं दिया जाता है। छात्र-छात्राओं से मात्र जानकारी उगलने की अपेक्षा की जाती है। हो सकता है कि ऐसा सोच-समझकर न किया जा रहा हो। लेकिन शिक्षण के ये पैमाने हमें एक दुष्चक्र में फंसा देते हैं। इसमें पढ़ाने का उद्देश्य बेहतर समझ बनाना नहीं है क्योंकि परीक्षा में इसकी ज़रूरत नहीं है। दूसरी ओर मूल्यांकन प्रक्रिया में अवधारणात्मक समझ की कोई जांच नहीं की जाती है, क्योंकि हम चाहते हैं कि हमारे विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे परिणाम पा सकें!

अच्छे नम्बरों की यह धुन कई बार हमें जान-बूझकर परीक्षा और मूल्यांकन को हल्का या सरल बनाने की ओर धकेल देती है। उदाहरण के लिए प्रायोगिक परीक्षा को ही लें। इसमें उदारतापूर्वक नम्बर 'देने' का बड़ा महत्व है। विद्यार्थियों को सरल-से-सरल प्रयोग करने को दीजिए, नंबर देने के दिशा निर्देशों का पालन न करते हुए नंबर 'बांट दीजिए'। नतीजतन अधिकतर विद्यार्थी प्रायोगिक परीक्षा में 'काफी अच्छा' कर लेते हैं। वे खुश होते हैं कि उन्हें अच्छे नम्बर मिल गए हैं और शिक्षक खुश होते हैं

कि उन्होंने अच्छे नंबर दिलाने में विद्यार्थियों की मदद की है। सबको यह यकीन होने लगता है कि विद्यार्थी उतना सीख पा रहे हैं जितना उन्हें सीखना चाहिए।

मूल्यांकन प्रणाली की हालत

यानी एक 'दोषपूर्ण मूल्यांकन पद्धति' बहुत कुछ सीख लेने के भ्रम को पुख्ता करती है। यह खतरनाक है क्योंकि इससे सीखने की चाह के दरवाज़े बंद होने लगते हैं। क्योंकि सीखने के लिए यह 'जानना' तो एक पूर्वशर्त है कि आप पर्याप्त नहीं जानते हैं। अगर आपने यही नहीं समझा तो यह आपके सीखने में एक गंभीर बाधा है। यकीन मानिए, हम में से अधिकतर लोग, विवेक से महरूम इस भ्रम में जीते हैं कि हम बहुत कुछ जानते हैं।

फिर ऐसे में विद्यार्थियों को एक और खतरनाक संकेत यह मिलता है कि उनका मुख्य लक्ष्य हर -एक परीक्षा में अच्छे नम्बर पाना है। अगर कभी उन्हें यह अहसास हो भी जाए कि वे दरअसल कुछ सीख नहीं रहे हैं, तब भी जब तक इसका बुरा असर उनके परीक्षा परिणामों पर नहीं पड़ रहा हो, तब तक उन्हें फिक्र करने की ज़रूरत नहीं लगती। इस तरह वे लगभग कभी भी कुछ न समझ पाने के कारण 'परेशान' नहीं होते। ऐसे बहुत ही कम विद्यार्थियों से मेरा सामना हुआ है जो बहुत कोशिश के बावजूद कोई टॉपिक, कोई विषय या कोई अवधारणा समझ न पाने के कारण चिंतित हों।

'क्या हम प्रदर्शन की इस अधपकी, अदूरगामी धारणा के मार्फत अपने छात्र-छात्राओं को गंभीर हानि नहीं पहुंचा रहे हैं?' 'क्या हम उनके बेहतर वैज्ञानिक, शोधकर्त्ता, शिक्षक आदि बनने के दरवाज़े बंद नहीं कर दे रहे हैं?' ये कुछ सवाल अक्सर मुझे घेर लेते हैं। इतनी सारी शंकाओं के होते हुए मैं शिक्षक होने के अपने कर्त्तव्य के बारे में अक्सर अपने आपको दुविधा में पाती हूं।

क्या मेरा शिक्षण परीक्षा परिणाम की ज़रूरतों के अनुसार होना चाहिए या फिर मुझे विषय की बेहतर समझ बनाने की कोशिशों पर ध्यान देना चाहिए? मेरे मन में दुविधा इसलिए है क्योंकि ये दोनों आपस में मेल नहीं खाते। आखिरकार विद्यार्थियों को एक ऐसी परीक्षा प्रणाली से गुज़रना होगा जिसे मैं नहीं बदल सकती। तो क्या मुझे विद्यार्थियों को सिर्फ जानकारी परोसनी चाहिए? या उनमें वैज्ञानिक मानसिकता, समस्याओं के हल ढूंढने और विश्लेषण करने की क्षमताओं का विकास करने की कोशिश करनी चाहिए? दूसरा विकल्प अपने आप ही उनमें जानकारी इकट्ठा करने और तार्किक निष्कर्षों तक पहुंचने के लिए इन जानकारियों का उपयोग करने की

क्षमता को पनपाएगा। सवाल यह है कि क्या मुझे उन्हें इस भ्रम में रहने देना चाहिए कि वे सब कुछ समझ गए हैं या जान-बूझकर उन्हें यह एहसास दिलाना चाहिए कि वे काफी कुछ नहीं समझे हैं।

मैं दूसरे विकल्प को पसन्द करती हूं। यह विकल्प इस बात के बावजूद पसन्द है कि इससे मैं एक कम लोकप्रिय शिक्षक बन जाती हूं। ऐसा इसलिए क्योंकि यह विकल्प चुनकर मैं विद्यार्थियों को मौजूदा परीक्षा पद्धति के लिए तैयार नहीं करती।

मुझे उम्मीद है कि एक दिन मेरे विद्यार्थी इस बात को समझ पाएंगे कि मेरे मन में ज़्यादा व्यापक लक्ष्य थे।

शशि सक्सेना: दिल्ली स्थित दीनदयाल उपाध्याय कॉलेज में रसायनशास्त्र पढ़ाती हैं व विज्ञान शिक्षण को बेहतर बनाने से संबंधित विभिन्न प्रयासों से जुड़ी हुई हैं।
अंग्रेज़ी से अनुवाद: टुलटुल विश्वास। एकलव्य के प्रकाशन समूह से संबंद्ध।

श्रम का वैज्ञानिक ढंग से विभाजन!!
ताकि सबको रोज़गार मिल सके।
चाइनिज सटायर एंड ह्यूमर से।

कहानी

तेईस नुआ दो सौ सात

नीलमणि साहू महापात्र

बचपन से आज तक गणित विषय के प्रति एक आतंक का भाव मेरे मन में रहा है। संख्याओं के भीतर जो आदान-प्रदान चलता है, वह मेरे इस साधारण से दिमाग में प्रवेश नहीं कर पाता। यद्यपि मैं समझ गया हूं, यह पृथ्वी और जीवन जितने परिमाण में कविता, कहानी, दर्शन, कला, संगीत या धर्म से नहीं चलता उससे लाखों गुना संख्या या अंकों के दांव-पेंच से चलता है। शत-प्रतिशत लोगों की जीवन-धारा इसी गणितिक साध्य और साधना पर ही निर्भर करती है। मेरा अपना जीवन भी उससे अलग नहीं है। सिर्फ उतना ही नहीं, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के सभी विभागों पर अभी गणित ही अधिकार किए हुए है। अब तो दर्शन, व्याकरण, अर्थशास्त्र, चित्रकला, यहां तक कि संगीत आदि सभी क्षेत्रों में गणित आवश्यक हो गया है। परिमाप व परिसंख्या विद्या के रूप में भी यह साम्राज्यवादी फासिस्ट गणित-शास्त्र हमारे जीवन के सभी तत्व और तथ्य की सीमा पर अधिकार कर बैठा है।

पर मेरा दुर्भाग्य है, कि अपने बचपन से ही मैं इस विशाल विद्या के प्रति ध्यान नहीं लगा पाया। सिर्फ साहित्य, संगीत, धर्म, दर्शन आदि का होकर ही मतवाला रहा। हालांकि, गणित के प्रति आतंक या वैराग्य के लिए केवल मैं ही ज़िम्मेदार हूं, ऐसा नहीं है, मुझे बाल्यावस्था में पढ़ाने वाले कुछ निष्ठुर, अहंकारी पंडित, बेंतधारी गणित शिक्षक भी इसके लिए ज़िम्मेदार हैं।

उन्होंने जब मुझे गिनती सिखाई या उन्होंने जब मुझे एक, दो, तीन...गिनना सिखाया उसे मैं आसानी से जल्दी ही सीख गया और मुझे संख्याओं को जोड़ना भी आ गया। मुझे याद है – ऊपर नीचे लिखा हुआ चार अंकों वाला छह स्तरों युक्त जोड़ मैं एक मिनट में कर सकता था। तब तक मेरे गणित के ज्ञान पर किसी को संदेह न था। मगर असुविधा हुई – घटाने और भाग देने में। गुणा भी मैं आसानी से कर लेता था, चाहे जितना बड़ा गुणा क्यों न हो। किन्तु परेशानी थी – 9534 से 8679 को घटाने में। 4 में से 9 घटाते समय उसके पहले की संख्या से दस उधार लाकर उसे चार में मिलाकर फिर उससे 9 घटाया जाएगा और उस संख्या को नीचे लिख दिया जाएगा, साथ ही ऊपर की संख्या की ओर देखकर सोचते वक्त मेरा दिमाग गोलमाल हो जाता था। मैंने कहां से उस 10 संख्या को उधार लाकर अपना काम चलाया था, इससे दूसरी संख्याओं की हालत क्या होगी। यह न समझ पाने के कारण मैं हड़बड़ा जाता और तभी मेरी पीठ पर बेंत पड़ती एवं मूर्ख, गधा, बुद्धू जैसे विशेषणों की मुझ पर वर्षा होने

लगती। उसी समय मेरी बाल्य-प्रेमिका छः वर्ष की चारुलता मेरे पास बैठ कर, उस घटाने को सही बनाकर मेरी पिटाई और गाली सुनकर हंसती। तब मेरे सिर के भीतर मेरे आंसू जमा होकर मेरी सामान्य सूझबूझ को डूबो देते थे। मैं उस घटाने को उस दिन से आज तक अच्छी तरह नहीं सीख पाया।

उसी तरह भाग सीखते वक्त भी परेशान हुआ हूं और मार-गालियां भी मिली हैं। 3879 को 25 से भाग देना कम मुसीबत भरा और कष्टदायक नहीं है। पहले कोई दिक्कत नहीं हुई। 25 दूने 50 नहीं जाएगा, इसलिए 25 एकम 25 रखकर 38 से घटा देने पर आसानी से 13 बचा। पर उसके बाद जो आगे के कारनामे शुरू हो जाते। ऊपर से नीचे संख्याओं को उतारना फिर 25 से भाग देकर भागफल और भाग शेष रखना – बाप रे बाप! सिर की नसें फटी जा रही हों और ऊपर से गणित शिक्षक द्वारा बेंत से पिटाई और गधा, मूर्ख आदि विशेषण एवं मेरी बाल्य-प्रेमिका गणित विदूषी व हमारी कक्षा की लीलावती चारुलता की गर्वीली मुस्कान। ओह, उन दिनों की गणित कक्षाएं मेरे लिए कितनी कष्टदायक और यंत्रणामय हुआ करती थीं।

इसके अलावा मेरे मन में भी कुछ संदेह रहता था – जिसे कि उस वक्त कोई समझा नहीं सका था जैसे – 5 तिनकों के साथ 7 कंचे मिलने पर कितना होगा? मैं सोचता कितना क्या हुआ? कितना कैसे होगा? 5 तिनकों के साथ आखिर 7 कंचे मिलेंगे किस तरह? 5 बकरियों के साथ 7 भेड़ें मिलकर चर सकती हैं, मगर लकड़ी के साथ कंचे कैसे मिल सकते हैं?

गणित के गुरुजी इसी तरह के ऊल-जलूल सवाल हमेशा किया करते थे। उसी तरह 25 केलों को अगर पांच लोगों में बराबर बांटा जाए – तो एक आदमी को कितने केले मिलेंगे? ऐसा सवाल होगा लेकिन केले के दर्शन ही नहीं मिलेंगे, फिर किन भाग्यवानों को वो केले बांटे जाएंगे, या उस बंटवारे का दायित्व किसे दिया जाएगा, या वे बांटने वाले उन केलों में से खुद एक केला खा सकेंगे या नहीं? ऐसे ढेरों सवाल मेरे दिमाग में उथलपुथल मचा रहे होते, परन्तु गणित के गुरुजी उन सबके बारे में कोई सूचना नहीं देते। परिणामस्वरूप 'पांच पंजे पच्चीस' मुझे मालूम होने के बाद भी मैं – सभी के हिस्से पांच-पांच केले पड़े – कह नहीं पाता और गणित के गुरुजी की दृष्टि में अनमना साबित होकर पिटाई भी खा जाता था।

इसी तरह संख्या जब व्यक्ति विशेष या प्राणी विशेष के साथ जुड़ जाती थी तब और भी बड़ी समस्या मेरे सामने आ खड़ी होती थी। मान लीजिए एक गणित इस प्रकार है – राम जिस

काम को 6 दिनों में कर सकता है, श्याम और हरि मिलकर उसे 2 दिनों में कर लेते हैं। तब श्याम अकेले उस काम को कितने दिनों में करेगा? हालांकि मैं बचपन में आज की तरह ही मूर्ख था, मगर ये गणित का सवाल मेरे दिमाग में कई बौद्धिक समस्याएं पैदा करता था। जैसे – सवाल में स्थित 'काम' वास्तव में किस तरह का काम है? भाजी तोड़ना एक काम है, आम बटोरना भी एक काम है, हल चलाना, मिट्टी साधना भी एक काम है और गणित के सवाल हल करना भी एक काम के रूप में माना जाएगा या नहीं? इसका उल्लेख गणित के गुरुजी अपने सवाल में नहीं करते थे।

उसी तरह राम, श्याम और हरि आदि कौन हैं, और उनका स्वास्थ्य, शक्ति, कार्य कुशलता और उनके 'पारिवारिक झमेलों का विवरण' भी उस सवाल से जानने को नहीं मिलता। और इन सबके बाद राम, श्याम, हरि आदि वे रहते कहां हैं, वे नाटे हैं, लम्बे हैं, मोटे हैं या पतले, गोरे हैं या काले? वे इस सवाल में स्थित 'काम' को क्यों करते हैं और करने के बाद क्या पाते हैं? ये सब सवाल उस वक्त मेरे दिमाग में चक्कर लगाया करते थे, फलतः मैं सवाल का जवाब न दे पाकर पिटाई और फटकार खाता।

उसके बाद मैं धीरे-धीरे बड़ा हुआ, मेरे लिए विधिवत एक गणित की किताब आई। उस किताब को देखते ही मेरा दिमाग खराब हो गया। हमारी उस वक्त तक पढ़ी हुई कोई किताब – साहित्य, भूगोल, इतिहास या प्रकृति-अध्ययन – उस गणित की किताब जैसी डरावनी दिखाई नहीं दी थी। सभी पुस्तकों में तरह-तरह के

चित्र थे। बिल्ली, कुत्ते, पुरी का मंदिर, सांप, नेवला, पहाड़, पेड़, चिड़िया, मछली, ताजमहल, मनुष्य, चांद और सूरज, बादल, अकबर, बाबर, दशरथ, मुनि-ऋषि, यहां तक कि इंद्र, वायु जैसे देवताओं के चित्रों से युक्त वे किताबें बड़ी आकर्षक लगती थीं। लेकिन इस गणित की किताब में शुरू से आखिर तक सिर्फ गणित के सवालों के सिवाय और कुछ न था। तब काफी तलाशने के बाद मैंने उसमें से एक घड़ी का चित्र खोज निकाला, उस तस्वीर की स्याही भी फीकी पड़ गई थी। लेकिन उसमें तीन कांटे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। कांटे एक से बारह तक की संख्या में से किसी-न-किसी की ओर इशारा कर रहे थे। उसके नीचे बड़े ही कठिन सवाल थे। जैसे – घड़ी की बड़ी सुई जब दस पर और मिनट की दो पर हो, तब दस बजकर

कितने मिनट हुए?

छोड़िए भी – उस किताब को देखकर मैं काफी चिढ़ गया। लेखक या पुस्तक प्रकाशक ने मुखपृष्ठ पर एक अच्छा-सा चित्र भी नहीं दिया था। सादे मुखपृष्ठ की किताब मुझे डायन सी लग रही थी। किताब के ऊपर एक बेहतर-सा चित्र तो दिया ही जा सकता था – जिसमें एक बच्चा स्लेट पकड़ कर गणित के सवाल हल कर रहा हो और उसके पास उसकी छोटी बहन कुछ कंचों के साथ लकड़ी के तिनके मिलाने की कोशिश कर, उन्हें न मिला पाने के कारण रो रही हो? मन-ही-मन चिढ़ कर सोच रहा था – यह पढ़ाई पिशाचिन और मास्टर व किताब पिशाच की तरह हैं।

उस पुस्तक से गणित सीखते समय मेरा दिमाग चकरा जाता। अगर कोई एक गणित का सवाल पूछे तो आंखों के सामने अंधेरा छा जाता था। जैसे-जैसे गणित के प्रति मेरी अरुचि जितनी बढ़ती गई, उतना ही मैं कक्षा, स्कूल, घर और गांव में भी मंदबुद्धि या मूर्ख के रूप में जाना जाने लगा। कक्षा के बीस विद्यार्थियों में हम तीन सर्वसम्मति से 'गधा' उपाधि पा चुके थे। मेरे अलावा अन्य दो में से एक था – माधिया बारिक। उसे हम माधो कहकर

पुकारा करते थे। माधो माधिया के साथ गधा या गधिया उपाधि खूब जम जाती थी। इस उपाधि को लेकर उसके मन में कोई लज्जा या अपमान जैसा भाव कभी नहीं आता। उसे इस नाम से पुकारने पर या उसकी पीठ पर दो घूंसा जमाकर कहने पर भी वह हंसते हुए लोटपोट हो जाता था। 'ध' अनुप्रास उसके कान में जैसे गुदगुदी पैदा कर देती थी। (आह! रहने दो उसके विषय में और कुछ नहीं कहूंगा – उसे कोढ़ हो गया। वह अपने बरामदे में फटी गुदड़ी, व चिथड़ों में मक्खी-मच्छरों के बीच सोते हुए एक दिन मर गया। उसे उसके सब भाई मिलकर मिट्टी का तेल डालकर जला आए।)

दूसरे गधे का नाम सोवणी सेण था। पर वह इतना गधा नहीं था। कंचे और गिल्ली-डंडा खेल में वह उस्ताद था। उछल-कूद में बंदर भी उसे नहीं हरा सकता था। इसके अलावा झूठ बोलते वक्त उसकी जुबान कतरनी की तरह चलती थी। मार-पीट उसके लिए आम बात थी। हेड पंडित का बक्सा खोलकर रुपए चुराने से लेकर, गोविंद सेनापति के नारियल के पेड़ पर चढ़कर नारियल तोड़ लाने जैसे असाध्य काम करने के बावजूद वह हर जगह निदोष साबित होकर निकल आता था। इन सब में उसकी जालसाज़ बुद्धि बहुत काम आती थी। पर गणित करते वक्त उसकी वह विचित्र बुद्धि काम नहीं आती। गणित के गुरुजी से मार व गाली खाता। मगर ताज्जुब की बात यह है, इसके लिए भी किसी प्रकार की चिंता उसे न थी। उसे कोई मूर्ख या गधा कहे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह अपनी चोरी, लड़ाई-झगड़े में ही मशगूल रहता था।

पर सारी चिंता और सारे दुख मेरे ही थे। पिटाई के लिए मुझे उतना दुख नहीं था। उस समय एक नीति-वाणी हम हमेशा सुना करते थे – मार खाए धमधम विद्या आए झमझम। अपनी मूर्खता के प्रति मैं व्यथा और वेदना अनुभव करता था। मैं अपने को काफी आहत और अपमानित भी अनुभव करता था।

एक दिन हमारे सेकेण्ड पंडित, गणित शिक्षक की अनुपस्थिति में कक्षा में आकर हमसे तरह-तरह की मज़ेदार बातें कर रहे थे। उसी दरम्यान वे मौखिक गणित के सवाल भी हमसे पूछने लगे। एक सवाल था – एक पेड़ पर 106 चिड़िया बैठी हुई थीं। एक बंदूकधारी के बंदूक दागने पर 6 चिड़िया मरकर नीचे गिर गईं। अब बताओ कितनी चिड़िया बचीं? हमारी कक्षा का पहला गधा, माधो बारिक शुरू से ही सवाल नहीं समझ पाया। चिड़िया और पेड़ की बात ही समझा। बंदूक शब्द और दागने की क्रिया ने

उसे बड़ी असुविधा में डाल दिया। वह सवाल सुनकर हंसने लगा। उसके बाद हमारा दूसरा गधा सोवणी सेण भी सवाल नहीं सुन पाया। वह खिड़की में से बाहर झांककर बदमाश लड़कों के साथ आंखों से इशारे कर रहा था। तब उसके दिमाग में ज़रूर कोई शैतानी सूझ रही थी। पर मैंने सवाल सुनकर उसका उत्तर सोच लिया। और जब सर ने कहा, "कौन कह सकता है, हाथ उठाओ।" तब दूसरे बुद्धिमान विद्यार्थियों के साथ मैंने भी हाथ उठाया। मगर सर मुझ जैसे विख्यात गधे से न पूछ कर एक-एक कर दूसरे होशियार छात्रों से पूछते चले गए। वे सभी इस सवाल को साधारण घटना समझकर 106 में से 6 घटाते हुए "सौ चिड़िया, सौ चिड़िया" कहकर चिल्लाए। अचानक मैं उन बुद्धिमानों के पतन से उत्साहित होकर ज़ोर से बोला, "सर ! एक भी चिड़िया पेड़ पर नहीं रही।" सर ने इतना सुनकर आश्चर्य से मेरी ओर देखा।

गधे की इतनी बुद्धि! मेरा उत्तर सुनकर आमतौर पर गणित में बुद्धिमान माने जाने वाले विद्यार्थी, मेरे घटाने के ज्ञान की शोचनीय परिणति देखकर हंस उठे। पर जब सर ने मेरा उत्तर ठीक है कहकर सही होने का कारण समझा दिया तो उस समय वे कुछ लज्जा अनुभव करने लगे। मेरे प्रति पहली बार उनके मन में ईर्ष्या का भाव जाग उठा।

मेरा उत्तर सही होने का कारण था – मैंने 106 से 6 संख्या के घटाने की ओर ध्यान न देकर, बंदूक की आवाज़ के बारे में सोचा। पर हमारी कक्षा के वे तथाकथित बुद्धिमान 106 पक्षियों को 106 संख्या समझ बैठे थे।

उसके बाद सेकेण्ड पंडित ने एक और मज़ेदार मौखिक सवाल पूछा, "चार सौ अस्सी – शून्य ले गई बूढ़ी मौसी – अब बताओ रहा कितना? और गया कितना?"

हमारी कक्षा के बुद्धिमान गणितज्ञों ने तुरन्त 480 से शून्य मिटाकर 48 रखे और 480 से 48 घटाकर एक स्वर मे चिल्ला उठे – 432, सर 432 । 432 गया और 48 रहा।

सेकेण्ड पंडित के हंसते हुए मेरी ओर देखते ही मैं डरते हुए बोला, "सर कुछ नहीं गया। जो था वही रहा – मतलब वही 480 ।"

इस बार भी सेकेण्ड पंडित आश्चर्य से मेरे चेहरे की ओर ताकते रहे । मेरे बारे में अपना मत परिवर्तन करने का निश्चय कर दूसरे विद्यार्थियों को शून्य शब्द की संख्या का अर्थ समझाने के साथ, उसका दूसरा तात्पर्य भी समझाया और मेरे जवाब की सटीकता प्रमाणित की। इस बार भी सभी विद्यार्थी मेरी ओर आश्चर्य मिश्रित

शंका व ईर्ष्या से देखते रहे। इसी तरह सेकेण्ड पंडित ने उस दिन और चार-पांच मज़ेदार सवाल किए थे – जिनमें दूसरों के उत्तर गलत रहे, और मेरे सही।

वह दिन शायद मेरे जीवन का सौभाग्यशाली दिन था। क्योंकि मैं मन-ही-मन अपने को बुद्धिमान समझ पाया और गणित न आने के कारण जो गधे की उपाधि से विभूषित था, उसके प्रति उपेक्षा करने लगा। साथ ही गणित पढ़ाने वाले शिक्षकों के प्रति मेरे मन में द्वेष और नफरत का भाव जाग उठा।

मुझमें और एक गुण था। मैं तुकबंदी कर पद्य रचना किया करता था, उस समय मैंने जो पद्य लिखे थे उनमें से जो पंक्तियां मुझे याद हैं वे इस तरह हैं:

कोयल गा रही है
कितना सुमधुर गीत
काली समझ क्यों उसे
गाली देते हो मीत?

टप-टप गिरा पानी
आसमान न दिखा सुहानी।
गरज रहा था बादल
तड़क रही थी बिजली
चमक रही थी बदरी
पेड़ में पका है पिजुरी।
टें टर्रर टें टर्रर
मेढ़क पढ़ रहा मंतर।
चिपचिपाता है कादो
महीने का नाम भादो।
उमड़ कर जैसे बरसा
चली आ रही हो सहसा।
दिन में छाया अंधकार
घर से न निकला
कोई बाहर।

इसी तरह तुकबंदी कर मैं पद्य लिखा करता था। जब मैं

लिखने को बैठ जाता, तब शब्द अपने आप जुट जाते और पद भी मिल जाया करता था। जैसे धाम के साथ काम, कल के साथ बल, मन के साथ धन या गीत के साथ मीत मिलाकर पद्य रचना करके मैं काफी आत्मसंतुष्टि अनुभव करता था। मगर अपने कुछ अंतरंग मित्रों के अलावा मैं उन्हें किसी को नहीं सुनाता। खास तौर पर मैं अपने परम सखा मायाधर षडंगी को वो सब पढ़कर सुनाया करता था। मायाधर उन्हें सुनकर बड़ा खुश होता व कहता, "भविष्य में मैं एक कवि बनूंगा।" कवि होना बड़ी और अच्छी बात है, ये भी मुझे नहीं मालूम था। मैं खुश हो जाया करता था। मायाधर मुझसे नीचे की कक्षा में पढ़ने के बावजूद अपने व्यवसायी पिता के साथ बाहर आना-जाना कर मुझसे ज़्यादा जानकार था।

उसने कहा, "बुद्धिमान न होने पर कोई कवि नहीं हो सकता। कवि का सभी आदर व इज्ज़त करते हैं।" मैं मन-ही-मन सोचता – धत तेरी की! मैं क्या कवि बनूंगा। कवि ना गोभी। मगर मेरे मन में कवि बनने की बहुत आस थी। मैं बहुत करुण और संतप्त स्वर में बोला, "मायाधर मुझे तो गणित नहीं आता, मेरी इतनी बुद्धि कहां जो कवि बनूंगा?"

मायाधर मेरा ऐसा बंधु था जो मेरा दुख सह नहीं सकता। मुझे गणित नहीं आता है, मैं गणित में सौ में से शून्य या पांच-सात नम्बर लाता हूं, ये सब मायाधर को मालूम था। स्कूल में मैं गधे के रूप में जाना जाता था, यह भी वह जानता था। वह मन-ही-मन सुयोग की तलाश में था कि मुझे एक दिन अपनी कक्षा के सहपाठियों के सामने बुद्धिमान साबित करके छोड़ेगा।

एक दिन मैंने 'वीर बहूटी' नामक एक छोटा-सा पद्य लिखा था। उसे मायाधर को सुनाते ही वह काफी प्रसन्नता और उत्साह से बोला – "बचपन से ही जो ऐसी कविता लिखने लगा है, वह बड़ा होकर निश्चित ही एक कवि बनेगा।" मुझे उस पद्य की कुछ पंक्तियां अब भी याद हैं।

लाल मखमल सी वीर बहूटी
रहती कहां है? तू जाती कहां है?
किसने दिया तुझे ये दक्षिणी मलमल
घूंघट निकाल चलती है हर पल।
देख हमें क्यों छिप जाती है
हम क्या तेरे जेठ हैं?
नन्हा और नरम सा तेरा ये बदन
तुझे बनाया है कौन भगवन?
हरी घास की कालीन पर
चल रही है तू कितना मंथर।
वीर बहूटी – वीर बहूटी
तू है जग प्रसिद्ध रूपवती।

इस कविता को उसने मेरे हाथ से खींचकर अपनी जेब मे रखा। मैंने भी उससे नहीं मांगा। दूसरे दिन वह स्कूल

पहुंच कर हमारी कक्षा में आया। उस पीरियड में कोई शिक्षक न होने के कारण उसने इस कविता को ज़ोर-ज़ोर से पढ़कर सबको सुनाया। हमारी कक्षा के कुछ बुद्धिमान गणित जानने वाले विद्यार्थी मायाधर के मुंह से कविता सुनकर काफी खुश हुए और पूछा, "इसे किसने लिखा है?" मायाधर मेरी ओर ऊंगली दिखाकर बड़े नाटकीय ढंग से बोला, "ये वहां बैठे हैं – कवि श्री महापात्र नीलमणि साहू।" मैं इस समय गर्व महसूस कर रहा था। मगर वही बच्चे अचानक हंस उठे। उनमें से एक मुझे चिढ़ाते हुए बोला, "जिसे मामूली-सा जोड़-घटाना नहीं आता वह गधा ऐसी कविता लिखेगा! बिल्कुल असंभव।"

हम उस वक्त सातवीं कक्षा में भक्त कवि मधुसूदन राव की 'साहित्य प्रसंग' किताब पढ़ते थे और उस ज़माने के एक व्याकरण के विद्वान बलभद्र नायक हमें पढ़ाया करते थे। मैंने अपने जीवन में वैसा साहित्य शिक्षक और नहीं देखा। उनकी उम्र उस वक्त करीब चालीस की होगी। उनके चमत्कार पूर्ण पढ़ाने का ढंग, 'जीवन चिंता' नामक कविता की व्याख्या – इन सबके बाद मुझमें अपने आप वैराग्य भाव जागृत हो गया। मैंने कुछ दिनों तक बड़ी तिक्तता अनुभव की और इस दरम्यान मायाधर के साथ सलाह मशविरा कर घर से चले जाने का निर्णय भी ले लिया। पर अचानक अपने स्कूल की पांचवीं कक्षा में पढ़ने वाली छात्रा मंजुलता के प्रेम में पड़कर मैं रुक गया। और बचपन से मातृविहीन छोटे भाई-बहनों की दुरावस्था की बात सोचकर मायाधर का मन भातृ-प्रेम से विचलित हो गया और हम दोनों ने घर छोड़कर संन्यासी बन जाने का विचार त्याग दिया।

साहित्य में हमारी कक्षा के विद्यार्थियों का अच्छा बोलबाला था। इसलिए उन्होंने मेरी कविता को बहुत पसंद किया। उनका यही कहना था, कि मेरे जैसा गधा ऐसी कविता नहीं लिख पाएगा। लेकिन मायाधर उन्हें छोड़ने वाला प्राणी नहीं था, वह बारबार अड़कर कहता रहा कि यह कविता इसने ही लिखी है और यह भविष्य में एक कवि बनेगा। मायाधर की ज़िद देखकर मेरी कक्षा का एक विद्यार्थी मेरी ओर देखते हुए बोला, "तब इसने किसी कविता से नकल की होगी।"

यह सुनते ही मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी। मैंने अपने को अपमानित अनुभव किया। मगर मायाधर अपनी बात पर अटल था। उसने मेरी दूसरी कविताओं के बारे में भी उल्लेख किया। उसके बाद दो लड़के मायाधर को लेकर वह कविता दिखाने के लिए साहित्य के अध्यापक के पास पहुंचे। मगर वहां गणित के

सर मुंह फुलाए हुए बैठे थे और उनके सामने गणित की किताब पड़ी थी। साथ ही उनकी बेंत भी थी। सारे लड़के मुझे अपमानित करने के लिए इस तरह तुले हुए थे कि उस कविता को गणित के गुरुजी के सामने रखकर बोले, "सर! इस कविता को पढ़िए! इसे नीलमणि ने लिखा है।" गणित के सर कविता को गणित के सवाल की तरह पढ़कर कुछ सोचते हुए और उस बेंत को हिलाते हुए मुझे अपने पास बुलाया, "अरे! ऐ लड़के इधर आ!"

मैं डरते हुए उनके पास गया। हाथ जोड़कर उनके सामने खड़ा हुआ। वे सिर पर बेंत छुआकर धमकाते हुए बोले, "यह कविता तूने लिखी है? सच बोल। नहीं तो तीन नंबर के गधे पीट-पीट कर तेरी खाल उतार दूंगा!"

मैं डरते हुए बोला, "हां सर! मैंने लिखी है!"

गणित के सर ने फिर आँखे लाल कर मुझे धमकाया, "चुप कर गधे! झूठ बोलता है। तूने इसे नकल नहीं किया है?"

अबकी बारी मैं ज़ोर से रो पड़ा, "नहीं सर ! मैंने कहीं से नकल नहीं किया है। अपनी बुद्धि से लिखा है। (अचानक 'मन से' शब्द की जगह 'बुद्धि से' शब्द पता नहीं कैसे मुंह से निकल गया।)

गणित के सर ने बेंत से मुझे पीटकर अपमानित करते हुए कहा, "बुद्धि से लिखा है? तेरी बुद्धि भी है? नालायक कहीं का। घटाना नहीं आता, सातवीं कक्षा में पढ़ता है! कितने नुआ दो सौ सात, बोल तो?"

तेईस नुआ दो सौ सात, यह मुझे पता होने के बाद भी उस वक्त दुख और क्रोध के कारण बोल न सका। मैं अपने हाथों में मुंह छिपा कर रोने लगा।

सर मेरी पीठ पर और एक बेंत जमाते हुए बोले, "जा भाग! नालायक, गधा कहीं का।"

मैं वहां से भागकर बच गया। मेरी कक्षा के सहपाठी आनंद से किला फतह करने जैसा शोर मचाते हुए कक्षा में लौट आए! पर मायाधर दुःखी और निराश होकर मेरे पास आया। उसके बाद हम दोनों कक्षा में न जाकर स्कूल छोड़कर चले आए और घर नहीं गए, वहीं घने ताड़ के वृक्षों के बीच बालू के ढेर पर बैठे। दोनों ही मित्र चुप थे। कोई किसी से बात नहीं कर रहा था। थोड़ी देर बाद मायाधर ने मुंह खोला, "अब इस स्कूल के विनाश के दिन आ गये हैं। मैं इस कविता को साहित्य के सर को दिखाऊंगा। ये गणित के सर कोई मनुष्य हैं? गणित कर-कर उसके दिन बीत रहे हैं। साहित्य के सर सारी बातें समझ जाएंगे।"

मैनें मायाधर की ओर बड़ी निराशा भरी नज़र से देखा और कहा, "नहीं

किसी को यह कविता दिखाने की ज़रूरत नहीं है। कोई विश्वास नहीं करेगा कि यह कविता मैंने लिखी है। साहित्य के सर भी मुझ पर संदेह करेंगे। लेकिन मायाधर, मैं कुताम चण्डी की शपथ लेकर कह रहा हूं, मैंने इसे कहीं से नकल नहीं किया है।"

मायाधर ने मेरी बात का कोई जवाब ने देकर, मेरा सिर अपनी गोद में रख लिया। तब मैंने कहा, "जब मैं बड़ा होकर बहुत बड़े-बड़े पद्य लिखूंगा तब ये सब नालायक समझेंगे कि मैं किसी की नकल न कर अपनी बुद्धि से लिखता हूं।"

हम दोनों घर वापस आ गए। मगर मैं काफी उदास हो गया। मुझे ऐसा लग रहा था मानो दुख से मेरा हृदय फट जाएगा। उस दिन स्कूल में जैसा अपमानित हुआ वैसा अपमान मुझे जीवन में और कहीं नहीं मिला।

अपमान बोध की अनुभूति मेरे जीवन में वह पहली थी। उसके बाद विभिन्न समय, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा, विभिन्न क्षेत्रों में मैं अपमानित नहीं हुआ हूं, ऐसी बात नहीं। पर मैं किसी के अपमान को अपने मन के भीतर जगह नहीं देता। क्योंकि धीरे-धीरे मेरी मान्यता बन गई कि जो अपमान करता है, अंत में वही अपमानित होता है। अपमान को अगर ग्रहण न किया जाए तब वह अपमान अपमानकारी के पास दुगुने वेग से लौट कर, उसे आक्रांत करता है।

बचपन के उस अपमान को मैं आज तक नहीं भूल पाया। मेरे कोमल मन पर उस दिन जो चोट लगी थी उसकी जलन मैं आज भी अनुभव कर रहा हूं। उसी चोट से मुझे सीख मिली है, कि निरीह, निरपराध लोगों का जानकर या अनजाने में अपमान करने पर – विश्व की मानवता के मर्म पर आघात होता है।

छोड़िए इन बातों को। उस दिन के बाद और कभी मेरी कविता की चर्चा स्कूल में नहीं हुई। मैं भी गणित को अपने वश में करने की कोशिश में लग गया। पर वह विद्या मेरे जीवन भर की कोशिश के बाद भी हासिल नहीं हो पाई और इस जन्म में शायद यह संभव हो भी नहीं पायेगा। फिर भी मेहनत करके मैं किसी तरह माइनर परीक्षा के गणित के पेपर में पास होने लायक मार्क ले ही आया था।

नीलमणि साहू महापात्र: प्रसिद्ध उड़िया लेखक।

चित्र: शोभा घारे: पेशेवर चित्रकार। भोपाल में रहती हैं।

उपरोक्त प्रस्तुति 'अभिशप्त गंधर्व' संग्रह में छपी नीलमणि साहू की कहानी 'मिद्दू अवधान का सर्वनाश' का एक अंश है।

वर्ष-8, अंक 43-48

शैक्षिक संदर्भ

अंक: 43

अंक: 44

अंक: 45

अंक: 46

अंक: 47

अंक: 48

इंडेक्स देखने का तरीका: छह अंकों में प्रकाशित सामग्री का विषय आधारित वर्गीकरण किया गया है। कई लेखों में एक से ज़्यादा मुद्दे शामिल हैं इसलिए वे लेख एक से ज़्यादा स्थान पर रखे गए हैं। लेख के शीर्षक और लेखक के नाम के साथ पहले बोल्ड में उस अंक का क्रमांक है जिसमें वह लेख प्रकाशित हुआ है। फुलस्टाप के बाद उस लेख का पृष्ठ क्रमांक दिया गया है। उदाहरण के लिए लेख 'हम घास क्यों नहीं खाते' 44.44 का अर्थ है यह लेख अंक 44, पृष्ठ क्रमांक 44 पर है।

भौतिकी (Physics)

रसायन शास्त्र (Chemistry)

प्राणीशास्त्र (Zoology)

वनस्पतिशास्त्र (Botany)

जंतु व्यवहार (Animal Behavior)

भूगोल/भूविज्ञान/खगोल विज्ञान (Geography/Geology/Astronomy)

गणित (Math)

इतिहास (History)

कला की पढ़ाई

बच्चों/शिक्षकों के साथ अनुभव

जीवनी/संस्मरण/प्रसंग

शिकार की तलाश में

ड्रेगनफ्लाइ का लार्वा (निम्फ) घात लगाकर पास आ रही मछली का इंतज़ार कर रहा है। मछली जैसे ही पास आई ड्रेगनफ्लाइ के लार्वा ने उसे एक झटके में दबोच लिया।

ड्रेगनफ्लाइ का लार्वा अत्यन्त खाऊ होता है और वयस्क बनने से पहले एकाध साल में लगभग 10–12 बार अपना खोल उतारता है।

एकलव्य की ओर से राजेश खिंदरी द्वारा भंडारी ऑफसेट प्रिंटर्स, ई-3/12, अरेरा कॉलोनी, भोपाल मे मुद्रित एवं एकलव्य ई-7/453 एच. आई. जी., अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016 मे प्रकाशित। संपादक - राजेश खिंदरी